अध्याय 14
भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन का महत्व
(Importance of Livestock in Indian Economy)

देश की 69–70 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है एवं कृषि से सम्बन्धित धन्धों पर आश्रित है। पशुधन कृषि व्यवसाय में एक महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। पशुधन से प्राप्त आय, घरेलू, पोषण, सुरक्षा एवं गरीबी उन्मूलन में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती है। भारत का पशुधन क्षेत्र विश्व में सबसे बड़ा है। 19वीं पशुधन गणना, 2012 के अनुसार भारत में कुल 5120.57 लाख पशुधन एवं 7292.09 लाख कुक्कुट सम्पदा है। 92.5 मिलियन भैंस (मादा) 16.2 मिलियन भैंस (नर), 122.9 मिलियन गायें (मादा) 68.0 मिलियन गायें (नर) तथा 729.2 मिलियन मुर्गियां है (तालिका 14.1)। वर्ष 2014–15 के दौरान पशुधन क्षेत्र (Livestock Sector) से 145.73 मिलियन टन दूध (66.42 मिलियन टन दूध गायों से 74.71 मिलियन टन दूध भैंसों से एवं 5.18 मिलियन टन दूध बकरियों से), 48.5 मिलियन टन ऊन, 6.73 मिलियन टन मांस तथा 78484 मिलियन अण्डों का उत्पादन हुआ। दूध उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है।

वर्ष 2012–13 में कुल राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 4.11 प्रतिशत और कृषि से प्राप्त सकल घरेलू उत्पाद का 25.6 प्रतिशत पशुधन क्षेत्र से प्राप्त हुआ।

राजस्थान की अर्थव्यवस्था में पशुधन का महत्व (Importance of Livestock in Economy of Rajasthan)

क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान का देश में प्रथम स्थान है। राजस्थान का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग कि.मी. है। इसका पश्चिमी तथा उत्तर पश्चिमी भाग मरू या अर्द्धमरूस्थलीय है। जो वृहद् भारतीय थार का रेगिस्तान के नाम से जाना जाता है। यह थार का रेगिस्तान राजस्थान के 12 जिलों में फैला है और कुल भू–भाग का 61.11 प्रतिशत है। राज्य के कुछ भाग पर अरावली की पहाड़िया बिखरी हुई है। राज्य में सिंचाई जल की अनुपलब्धता, सिंचाई के साधनों का अभाव, समय पर वर्षा का न होना, जोतों का आकार छोटा आदि ऐसे कारण है जिसकी वजह से ग्रामीण क्षेत्रों की जनता को कृषि उत्पादन के साथ–साथ पशुपालन को एक महत्वपूर्ण व्यवसाय के रूप में अपनाया जाता है। 19वीं पशुगणना, 2012 के अनुसार राज्य में कुल 577.32 लाख पशुधन तथा 80.24 लाख कुक्कुट सम्पदा है। जिसे नीचे तालिका 14.1 में दर्शाया गया है।

तालिका 14.1 पशुधन सम्पदा (2012)

क्रसं	पशु की जाति	भारत (मिलियन में)	राजस्थान (लाखों में)
1	गौवंश	190.90	133.24
2	भैंस	108.70	129.76
3	भेड़	65.06	90.71
4	बकरी	135.17	216.66
5	ऊँट	0.4	3.26
6	सुअर	10.29	2.38
7	अन्य	1.51	1.23
8	मुर्गी	729.2	80.24

राजस्थान राज्य में कुछ जिले ऐसे है, जिसकी पशुधन घनत्व के रूप में विशेष पहचान है। जिन्हें तालिका 14.2 में दिया गया है।

तालिका 14.2 राजस्थान में पशुधन घनत्व (पशुगणना, 2012 के अनुसार)

क्र.स.	जिले का नाम	क्षेत्र (वर्ग कि.मी.)	पशु घनत्व (प्रतिवर्ग किमी)
1	अजमेर	8481	232
2	अलवर	8380	206
3	बांसवाड़ा	5037	277
4	बारां	6992	115
5	बाड़मेर	28387	189
6	भरतपुर	5066	251
7	भीलवाड़ा	10455	234
8	बीकानेर	27244	102

* 10 लाख (10,00,000) = एक मिलियन

9	बूंदी	5776	167
10	चित्तौड़गढ़	10856	127
11	चूरू	16830	110
12	दौसा	3432	292
13	धौलपुर	3033	174
14	डूंगरपुर	3770	289
15	गंगानगर	10978	144
16	हनुमानगढ़	9656	138
17	जयपुर	11143	252
18	जैसलमेर	38401	83
19	जालौर	10640	153
20	झालावाड़	6219	165
21	झुन्झुनूं	5928	217
22	जोधपुर	22850	157
23	करौली	5524	169
24	कोटा	5217	124
25	नागौर	17718	178
26	पाली	12387	186
27	प्रतापगढ़	—	—
28	राजसमन्द	386	292
29	सवाईमाधोपुर	4498	179
30	सीकर	7732	274
31	सिरोही	5136	175
32	टोंक	7194	168
33	उदयपुर	13419	207
		कुल –342239	

* राज्य में सर्वाधिक पशुधन वाला जिला बाड़मेर, जबकि कम पशुधन वाला जिला धौलपुर है।

* पशु घनत्व की दृष्टि से सर्वाधिक पशुघनत्व वाले जिले दौसा एवं राजसंमद तथा सबसे कम पशुधन घनत्व वाला जिला जैसलमेर है।

पशुधन से जो पशु उत्पादन प्राप्त होते है, उनका राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान है, जिनका वर्णन नीचे दिया गया है।

1. दूध उत्पादन – राज्य में वर्ष 2014–15 में कुल 16934 हजार टन दूध का उत्पादन हुआ, उसमें से 6126 हजार टन गायों से, 8985 हजार टन भैंसों से तथा 1823 हजार टन बकरियों से प्राप्त हुआ। दूध उत्पादन में राज्य का भारत में द्वितीय स्थान है।

2. मांस उत्पादन – राज्य में वर्ष 2014–15 में कुल 181 हजार टन मांस का उत्पादन हुआ। बकरे के मांस को (Chevon), भेड़ के मांस को (Mutton), सुअर के मांस को (Pork) तथा गाय के मांस को (Beef) कहते है मांस उत्पादन में राज्य का भारत में बारहवां स्थान है।

3. अण्डा उत्पादन – राज्य में सर्वाधिक अण्डा उत्पादन अजमेर जिले में होता है। इसलिये यहां 1988 में राजकीय कुक्कुट प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई। कुक्कुट पालन में राजस्थान का देश में चौदहवां स्थान है। जहां देशी मुर्गी प्रतिवर्ष 120 अण्डे देती है। वहीं उन्नत नस्ल की मुर्गी प्रतिवर्ष 252 अण्डे देती है वर्ष 2014–15 में राज्य में कुल अण्डा उत्पादन 1320 मिलियन था। अण्डा उत्पादन में राज्य का भारत में चौदहवां स्थान है।

4. ऊन उत्पादन – पशुधन निदेशालय, राजस्थान सरकार, जयपुर के अनुसार वर्ष 2014–15 में 90.7 लाख भेंड़े है। जिनसे कुल 14463 मीट्रिक टन ऊन का उत्पादन प्राप्त हुआ। ऊन उत्पादन में राज्य का भारत में प्रथम स्थान है।

5. बाल – ऊँट तथा बकरी की कुछ नस्लों से बाल प्राप्त होते हैं, जिनका उपयोग थैले, दरियाँ, ब्रश निम्न श्रेणी के कम्बल आदि बनाये जाते हैं।

6. चमड़ा – चमड़ा मृत एवं मांस के लिये पाले जाने वाले पशुओं से प्राप्त होता है। जो आय का एक अतिरिक्त स्रोत है। भारत ने 2013–14 में चमड़े तथा उनके उत्पादों के निर्यात करने से 36000 करोड़ रूपये की आय प्राप्त की।

7. सींग, खुर, हड्डी – सींग और खुरों से कई प्रकार के सजावटी सामान तथा बटन, कंघी आदि भी बनाये जाते है। जबकि हड्डी के चूरे को निर्जमीकृत करके मुर्गी आहार में काम में लिया जाता है। तथा खेती में खाद के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

8. अन्य – पशुओं का उपयोग परिवहन में बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, ऊँटगाड़ी, सवारी ऊँट आदि में होता है। साथ ही पर्यटक स्थल एवं मेलों में ऊँट एवं घोड़ों की दौड़ एवं उनके नाचने से मनोरंजन होता है। पशुओं से गोबर की प्राप्ति होती है जिसे खाद एवं छाने (उपले) बनाने में प्रयोग होता है। अतः पशुधन का राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है।

पशुधन का कृषि में महत्व
(Importance of livestock in agriculture)

भारत एक कृषि प्रधान देश है। जहाँ की 69–70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं उससे सम्बन्धित कार्यों पर निर्भर करती है। प्राचीनकाल से ही पशुओं का कृषि में

महत्व रहा है। पशुपालन कृषि का अभिन्न अंग है तथा यह एक–दूसरे के पूरक है। आज देश में जनसंख्या के साथ–साथ पशु संख्या भी बढ़ती जा रही है। अधिकतर किसानों के पास खेती के लिए जमीन के छोटे टुकड़े हैं जहाँ ट्रेक्टर द्वारा खेती करना लाभदायक नहीं है। अतः छोटे किसान कृषि कार्यों में पशुओं का ही उपयोग करते हैं। अतः निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर कह सकते हैं कि पशुधन का कृषि में बहुत महत्व है।

1. कृषि क्रियाओं में महत्व

भारत में यांत्रिक कृषि केवल बड़े–बड़े फार्मो पर की जाती है परन्तु अधिकतर किसानों के पास खेत की छोटी–छोटी जोते हैं, जहां ट्रेक्टर द्वारा खेती करना संभव नहीं है। अतः किसान निम्नलिखित कृषि क्रियाओं को पशुओं की सहायता से ही करते हैं।

1.1 जुताई करना

अधिकांशतः किसानों की छोटी–छोटी जोतें होने के कारण आज भी जुताई पशुओं (बैल,पाडे,ऊँट) द्वारा ही की जाती है। बैलों से चलित देशी हल के फार की गहराई ट्रेक्टर चलित फार से अधिक होती है।

1.2 भूमि को समतल करना

भूमि के असमतल होने पर करहे द्वारा समतल करते है। इस करहे को खीचने के लिए बैल की आवश्यकता होती है। बैल के स्थान पर पाडे या ऊँट का भी उपयोग कर सकते हैं।

1.3 पाटा चलाना

जुताई के पश्चात् भूमि को समतल बनाने के लिए तथा मिट्टी के ढेलों को तोड़ने के लिए लकड़ी का भारी पाटा चलाया जाता है। इसे खींचने के लिए बैलों की आवश्यकता होती है।

1.4 बुआई करना

बुआई के लिए देशी हल के पीछे नायला बाँधकर बीज की बुआई की जाती है। यह कार्य भी बैलों व ऊँटों द्वारा किया जाता है।

1.5 मेंड़ व क्यारियाँ तैयार करना

इस कार्य में रिजमेकर आदि यंत्र काम में लेते है जिन्हें बैल आदि पशुओं से खींचा जाता है।

1.6 सिंचाई

कृषि के लिए जल सींचन का बड़ा महत्व है। भारत में जल सींचन अधिकतर कुँओं से किया जाता है। जिनसे पानी निकालने के लिए बैलों आदि का ही प्रयोग किया जाता है।

1.7 निराई–गुड़ाई

खेतों से खरपतवार निकालने के लिए कलपा यंत्र काम में ही लिया जाता है जिसे बैल आदि पशुओं द्वारा खींचा जाता है।

1.8 गहाई

छोटे किसान अधिकतर गहाई का कार्य भी बैलों द्वारा ही करते हैं।

2. यातायात के साधन

किसान अपना उत्पादन खलिहान से घर तक तथा घर से कृषि उपज मण्डी तक बैल गाड़ियों द्वारा ले जाते है। ऊँट, घोड़ा, खच्चर आदि भी कृषि उपज इधर उधर ले जाने के काम आते हैं। दुर्गम स्थानों, पहाड़ों, रेगिस्तानों में अन्य सुविधाओं के अभाव में पशु यातायात ही प्रमुख साधन है।

3. खलिहान की सुरक्षा

खलिहान की सुरक्षा मुख्यतः पालतू कुत्ते द्वारा की जाती है।

4. कार्बनिक खाद

खाद उपज हेतु एक पौष्टिक पदार्थ है। भूमि की उर्वरता बढ़ाती है। गोबर एवं मूत्र पशुओं से ही प्राप्त होते हैं, जो खाद का कार्य करते हैं।

5. अकार्बनिक खाद

पशुओं के मरने के बाद उनकी हड्डियों से सुपर फॉस्फेट खाद बनाई जाती है। यह खाद फलों वाले पौधों व अलंकृत बागवानी के पौधों के लिए आवश्यक होती है।

6. ऊर्जा उत्पादन में योगदान

पशुओं से प्राप्त गोबर का उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता है। गोबर के उपले बनाकर उनसे भोजन बनाने के काम लिया जाता है। गोबर का प्रयोग गोबर गैस संयंत्र में करके उससे गोबर गैस प्राप्त की जाती है। इस गैस का उपयोग भोजन बनाने, गैस की बत्ती से रोशनी उत्पन्न करने, विद्युत उत्पन्न करने आदि अनेकों कार्यों में किया जाता है। गोबर गैस बनाने के बाद प्राप्त स्लरी खाद के रूप में खेतों में प्रयोग की जाती है।

7. कृषकों को पूर्ण रोजगार

छोटे एवं सीमान्त किसानों को पशुपालन से वर्ष भर रोजगार प्राप्त होता है। खेती करने के बाद शेष समय में किसान पशु

पालन व्यवसाय कर पूर्ण रोजगार को प्राप्त करता है तथा उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार भी होता है। एक उन्नत नस्ल की गाय एक परिवार को रोजगार प्रदान करने में सक्षम है।

8. कृषकों को पौष्टिक आहार का स्रोत

पशुपालन से दूध, मांस, अण्डा आदि प्राप्त होते हैं, जो पौष्टिक आहार के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। दूध लगभग व पूर्ण भोजन है। मानव जाति के लिए दूध, दही, घी, मांस अण्डा आदि पदार्थ भोजन के रूप में उपयोगी हैं। इस देश में जहाँ काफी लोग शाकाहारी हैं, पशु प्रोटीन, दूध के रूप में ली जाती है। प्रोटीन के अतिरिक्त वसा, शर्करा,विटामिन, लवण आदि आवश्यक तत्व भी दूध में विद्यमान होते हैं।

9. आर्थिक स्थिति में सुधार

हमारे देश में राष्ट्र की कुल कृषि आय का लगभग 20 प्रतिशत केवल पशुधन से ही प्राप्त होता है। पशुओं से जो आय प्राप्त होती है। इस आय का उपयोग कृषि के लिए खाद, बीज एवं यंत्र खरीदने में किया जा सकता है।

10. कृषि में उपजे फसल अवशेष एवं खाद्य उपजात का सर्वोत्तम उपयोग

फसलों से प्राप्त उपजात जैसे कड़वी, भूसा आदि पशुओं को खिलाकर उनसे दूध, ऊन, मांस आदि प्राप्त किये जाते हैं। बैलों के द्वारा कृषि कार्य सम्पादित किया जाता है। यदि पशु न हो तो यह फसल उपजात व्यर्थ नष्ट हो जायेंगे क्योंकि ये मानव के उपयोग के बाहर पदार्थ हैं। मानव केवल इनको ईंधन के रूप में उपयोग ले सकता है। इस प्रकार पशुओं का कृषि में महत्वपूर्ण योगदान है। बिना पशुओं के भारत में खेती करना कठिन कार्य है। पशुओं की उपयोगिता खेती में भविष्य में भी बनी रहेगी।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत में विश्व की 57 प्रतिशत भैंसे तथा 12.5 प्रतिशत गायें हैं।
2. दुग्ध उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है।
3. राजस्थान के अजमेर जिले में सर्वाधिक मुर्गियों की संख्या है।
4. राजस्थान के भौगोलिक क्षेत्रफल का 61.11 प्रतिशत रेगिस्तान है।
5. वर्ष 2012 की पशुगणना के अनुसार राजस्थान में 577.32 लाख पशुधन तथा 80.24 लाख मुर्गियाँ हैं।
6. वर्ष 2012 की पशु गणना के अनुसार सर्वाधिक पशु घनत्व वाले जिले दौसा एवं राजसमंद तथा सबसे कम घनत्व वाला जिला जैसलमेर है।
7. प्रत्येक भेड़ से प्रतिवर्ष औसतन 1.365 किलोग्राम ऊन प्राप्त होती है।
8. भारत कृषि प्रधान देश है।
9. खेतों का आकार छोटा होने के कारण कृषि कार्यों में मशीनों की अपेक्षा पशुधन अधिक उपयोगी है।
10. यातायात के लिए ऊँट, घोड़ा, खच्चर आदि को काम में लेते हैं।
11. फसलों की कटाई के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में पशुधन से रोजगार मिलता रहता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. विश्व में दुग्ध उत्पादन में भारत का कौनसा स्थान है?
   (अ) पहला (ब) दूसरा
   (स) तीसरा (द) चौथा
2. वर्ष 2012 की पशुगणना के अनुसार राजस्थान में कुल पशुधन कितना है?
   (अ) 577.32 लाख (ब) 621.42 लाख
   (स) 534.49 लाख (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
3. भारत की जनसंख्या कृषि पर निर्भर है–
   (अ) 40 प्रतिशत (ब) 69–70 प्रतिशत
   (स) 50 प्रतिशत (द) 55 प्रतिशत।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

4. कुल राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में पशुधन का हिस्सा कितना है?
5. पशुगणना 2012 के अनुसार प्रतिवर्ग किलोमीटर सबसे कम पशु राजस्थान के किस जिले में पाये जाते हैं?
6. यातायात में उपयोगी पशुओं के नाम लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

7. वर्ष 2012 की पशुगणना के अनुसार सर्वाधिक पशु संख्या एवं सबसे कम पशु संख्या वाले जिलों के नाम लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

8. राजस्थान की अर्थव्यवस्था मे पशु उत्पादों के महत्व की विस्तृत जानकारी दीजिए।
9. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में पशुधन का क्या महत्व है? बताइए।

उत्तरमाला

1. (अ) 2. (ब) 3. (ब)

अध्याय 15
पशुओं की आयु एवं भार ज्ञात करना
(Determination of Age & Weight of Animals)

(i) आयु ज्ञात करना (Determination of Age) – पशुओं की आयु एवं आयु ज्ञात करने के तरीकों की जानकारी, पशु अनुसंधान, पशुपालन व्यवसाय, पशुपालन एवं पशु चिकित्सा विज्ञान के विद्यार्थियों एवं कृषकों को अपने–अपने स्तर पर होनी आवश्यक है। जिससे वे अपने–अपने कार्य क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य कर सकें। पशुपालन व्यवसाय में अच्छा लाभ प्राप्त करने एवं नया पशु खरीदते समय पशु की उत्पादक उम्र की जानकारी होनी चाहिए।

गाय, भैंसों की औसत आयु 20 से 23 वर्ष होती है। इन गाय, भैंसों का उत्पादन पहले से तीसरे व्यांत तक बढ़ता हैं, तीसरे से पाँचवें व्यांत तक लगभग स्थिर रहता है और उसके बाद उत्पादन में गिरावट आती है।

पशु अनुसंधान केन्द्र एवं संगठित डेयरी फार्मो को छोड़कर सामान्यतः पशुओं के जन्म की तिथि का कोई अभिलेख (Record) नहीं रखा जाता है। जिसके अभाव में पशुओं की आयु अन्य तरीकों से ज्ञात करते हैं जो निम्न प्रकार है।

1. पशु की शारीरिक दशा देखकर
2. खुर देखकर
3. सीगों द्वारा
4. दाँतों द्वारा

1. पशु की शारीरिक दशा देखकर (Determination of Age on the basis of Physical Condition): पशु की शारीरिक दशा देखकर आगे तालिका – 15.1 के आधार पर उसकी आयु का अनुमान ही लगाया जा सकता है कि पशु कम उम्र का है या अधिक उम्र का है।

तालिका – 15.1 पशु की शारीरिक दशा देखकर आयु का निर्धारण करना

क्र. स.	शरीर के अंग	शारीरिक दशा	
		कम उम्र में	अधिक उम्र में
1.	आंखे (Eyes)	चमकीली, चपल	चमक रहित, निदालू, आंखों के चारों तरफ झुर्रियाँ।
2.	सींग (Horns)	छोटे, चमकीलें	बड़े भद्दे (चमक रहित)
3.	त्वचा (Skin)	खींची हुई, चमकदार	ढीली झुर्रीदार, खुरदरी
4.	पीठ (Back)	सीधी	झुकी हुई
5.	पेट (Barrel)	सामान्य	लटका हुआ (नस्ल के अनुसार)
6.	अयन (Udder)	सुगठित, आगे और पीछे की तरफ फैला हुआ शरीर से चिपका हुआ	ढीला, लटका हुआ
7.	थन (Teats)	सुगठित, मध्यम आकारके	ढीले लटके हुए।
8.	थूथन (Muzzle)	चमकीला	झुर्रीदार
9.	स्वभाव	फुर्तीला, क्रियाशील (Active)	सुस्त, हताश (Nervous)

2. खुर देखकर (Hoof Examination): पशुओं की उम्र का अनुमान उसके खुरों को देखकर भी लगाया जाता है। कम उम्र में पशुओं के खुर छोटे आकार के चमकीले होते हैं, लेकिन उम्र के बढ़ने के साथ–साथ खुरों का स्वरूप भी बदल जाता है। खुरों का आकार बढ़ जाता है, लेकिन चमक कम होती है। काम की अधिकता खुले चारागाहों में चरने की समयावधि, स्थानीय भूमि (रेतीली, पथरीली, दलदली) आदि खुरों के स्वरूप को प्रभावित करते हैं। जिसके कारण खुरों द्वारा आयु का निर्धारण सही नहीं हो पाता है। कई पशु विक्रेता खुरों को काट–छाँटकर एवं रेगमाल से घिसकर खुरों को चमकीला बना देते हैं। जिससे पशु कम उम्र का दिखाई देता है।

3. सींगों द्वारा (Horn Examination): इस तरीके से केवल सींगों वाले पशुओं की ही आयु ज्ञात की जा सकती है। अगर आप पशु के सींगों की बनावट देखें तो उन पर छल्ले दिखाई देते हैं जो भैसों में स्पष्ट तथा गायों में कम स्पष्ट दिखाई देते हैं।

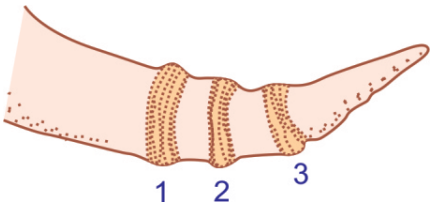

चित्र 15.1 तीन छल्लों युक्त सींग

ये छल्ले पशु की तीन वर्ष की उम्र पर बनना प्रारम्भ होते हैं। अतः तीन वर्ष की उम्र पर पहला छल्ला बनता है। उसके बाद हर वर्ष एक नया छल्ला बनता रहता है। अतः पशु के सींग पर छल्लों की संख्या के आधार पर उसकी उम्र का निर्धारण किया जाता है। कई बार पशु विक्रेता पशु के सींग के छल्ले को रेती से घिस देता है, जिससे पशु की आयु वास्तविक आयु से कम निर्धारित होती है। पशु की आयु की गणना निम्न सूत्र द्वारा की जाती है।

पशु की उम्र (वर्षों में) =2+ पशु के सीगों पर छल्लों की संख्या

4. दाँतों द्वारा (Teeth Examination): अन्य तरीकों की अपेक्षा पशुओं की आयु ज्ञात करने का यह तरीका अच्छा है। इसमें पशुओं के दाँतों की दशा देखकर एवं दाँतों की संख्या गिनकर उसकी आयु का अनुमान लगाया जाता है। इस तरीके से उम्र का सही निर्धारण होता है, लेकिन इसमें भी छः माह तक का अन्तर आ सकता है। दाँतों द्वारा आयु केवल अनुभवी व्यक्ति ही ज्ञात कर सकता है जिसे पशुओं की आयु के अनुसार दाँतों की स्थिति की जानकारी हो। दाँतो द्वारा आयु ज्ञात करने से पूर्व दाँतों की स्थिति की जानकारी हो। दाँतों द्वारा आयु ज्ञात करने से पूर्व दाँतों से सम्बन्धित कुछ जानकारी की आवश्यकता है, जो निम्न प्रकार है :–

(i) कर्तन दाँत (Incisor Teeth) : गाय, भैंस में ये सामने वाले होंठों से ढके रहते है। गाय, भैंस, भेड़, बकरी (चारों जुगाली करने वाले) के नीचे वाले जबड़े में ये दाँत पाये जाते हैं। इनकी कुल संख्या चार जोड़ी यानि 8 होती है। ये पहले अस्थायी तथा बाद में स्थायी निकलते हैं। इन्हें काटने वाले दाँत कहते हैं। इन्हें प्रायः पहला केन्द्रीय (Central), दूसरा मध्य (Middle), तीसरा पार्श्व (Lateral), तथा चौथा कोने की (Corner) जोड़ी कहा जाता है। पशुओं की आयु मुख्यतः इन्हीं दाँतों द्वारा आंकी जाती है।

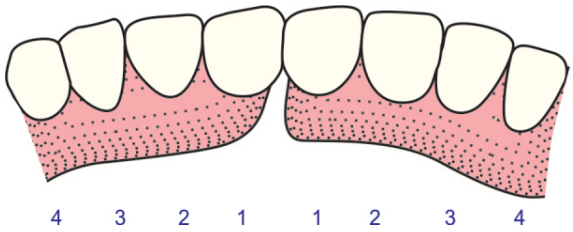

चित्र सं. 15.2 गाय के कर्तन दाँत

1. प्रथम (केन्द्रीय) जोड़ी 2 द्वितीय (मध्य) जोड़ी 3 तीसरी (पार्श्व) जोड़ी तथा 4 चौथी (कोने की) जोड़ी

(ii) अग्रचर्वण एवं चर्वण दाँत (Premolar and Molar Teeth) : पशु के मुख में दोनों (दांयी एवं बांयी) ओर के जबड़ो में ऊपर तथा नीचे चौड़ी सतह वाले छः–छः दाढ़ पाये जाते हैं, जिन्हें संयुक्त रूप से कपोल (Cheek Teeth) दाँत कहते हैं। इनमें से पहले तीन दाढ़ों को अग्रचर्वण (Premolar) तथा शेष तीन को चर्वण (molar) कहते हैं। आगे वाले दाढ़ छोटे तथा पीछे वाले बड़े होते चले जाते हैं। अर्थात् पहला अग्रचर्वण सबसे छोटा तथा अन्तिम चर्वण सबसे बड़ा होगा। अग्रचर्वण की कुल संख्या 12 तथा चर्वण दाँतों की भी कुल संख्या 12 ही होती है।

(iii) कील दाँत (CanineTeeth) : ऊपर, नीचे के दोनों जबड़ों में दोनों (दांयी एवं बांयी) ओर अग्रचर्वण दाँतों से पहले एवं कर्तन दाँतों के पश्चात् एक–एक कील दाँत पाया जाता है। जो नुकीला होता है। कील दाँतों की कुल संख्या चार होती है। ये दाँत सूअर, कुत्ता, बिल्ली में पाये जाते हैं,

लेकिन जुगाली करने वाले जानवरों जैसे– गाय, भैंस, भेड़, बकरी में नहीं पाये जाते।

(iv) दन्त्यू पूर (Dental Pad) जुगाली करने वाले पशुओं के ऊपरी जबड़े में कर्तन दन्त न होकर ऊतकों (Tissues) की एक मोटी एवं कठोर सतह होती है, जिसे दन्त्यू पूर कहते है। यह कर्तन दन्त चारा काटने में सहायता करता है।

(v) अस्थायी दाँत (Temporary Teeth) :- इन्हें दूध के दाँत (Milk Teeth)भी कहते हैं। ये दाँत जन्म के समय या जन्म से एक माह के अन्दर निकल आते हैं, बाद में ये दाँत गिर जाते हैं और इनके स्थान पर नये स्थायी दाँत निकल आते हैं।

(vi) स्थायी दाँत (PermanentTeeth) :- ये दाँत अस्थायी दाँतों के गिरने के बाद उनके स्थान पर उगते हैं, लेकिन इनमें चर्वण (Molar)दाँत स्थायी ही उगते हैं।

(vii) भरा मुख (Full Mouth) :- जब पशु के मुख में सभी स्थायी दाँत निकल आते है। उस अवस्था को भरा मुख कहते हैं।

(viii) टूटा मुख (Broken Mouthed) :- अधिक उम्र का वह पशु जिसका एक या एक से अधिक स्थायी दाँत गिर गये हों।

(ix) पोपला (Gummer) :- अधिक उम्र का वह पशु जिसके सभी स्थायी दाँत गिर गये हों।

(x) दन्त सूत्र (Dental Formula) :- यह पशु के मुख में सभी प्रकार के दाँतों को बताने का तरीका है। इस दन्त सूत्र से मुख में दांयी या बांयी एक तरफ के दाँतों को ही दर्शाते है। इस संख्या को दुगुना करने पर मुख में कुल दाँतों की संख्या ज्ञात हो जाती है।

$$\text{दन्त सूत्र} = \frac{I}{I} + \frac{C}{C} + \frac{PM}{PM} + \frac{M}{M}$$

यहाँ I= इन्साइजर (कर्तन दाँत)
C= कैनाइन (कील दाँत)
PM= प्रीमोलर (अग्रचर्वण)
M= मोलर (चर्वण)

साधारण भिन्न के रूप में लिखे दन्त– सूत्र में अंश ऊपरी जबड़े में दाँतों को दर्शाते हैं, जबकि हर निचले जबड़े में दाँतों को दर्शाते हैं।

(x) दन्त विन्यास : गाय, भैंस, भेड़, बकरी के मुख में अस्थायी तथा स्थायी दाँतों का व्यवस्थापन निम्न प्रकार होता है –

(अ) अस्थायी दन्त विन्यास $= \frac{0}{4}\ \frac{0}{0}\ \frac{3}{3}\ \frac{0}{0}$

(ब) स्थायी दन्त विन्यास $= \frac{0}{4}\ \frac{0}{0}\ \frac{3}{3}\ \frac{3}{3}$

नोट : यह दन्त विन्यास ऊपर एवं नीचे के जबड़े में एक तरफ (दाँये या बाँये) के दाँतों को दर्शाते हैं। इतने ही दाँत दूसरी तरफ होते हैं।

दाँतों का विकास निरीक्षण तथा आयु आंकना

जन्म के समय बछड़े के मुख में, निचले जबड़े में दो दाँत दिखाई दे सकते हैं। जन्म से एक माह के अन्दर आठों अस्थायी काटने वाले दाँत (Incisors) निचले जबड़े में निकल आते हैं। जन्म से एक महीने के अन्दर ही सभी 12 अग्रचर्वण (Premolar) भी निकल आते हैं। लेकिन चर्वण दाँत (Molar) नहीं निकलते हैं। ये चर्वण दांत स्थायी ही निकलते हैं। स्थायी चर्वण दाँतों का पहला, दूसरा एवं तीसरा जोड़ा अर्थात् कपोल दाँतों (Cheek Teeth)का चौथा, पाँचवां और छठा जोड़ा क्रमशः 6 माह 1 वर्ष तथा 2 वर्ष की आयु में निकलता है। जब चर्वण दाँतों का तीसरा जोड़ा यानि कपोल दाँतों का छठा जोड़ा 2 वर्ष की उम्र में निकलता है, तब तक सभी अस्थायी कर्तन दन्त गिर जाते हैं।

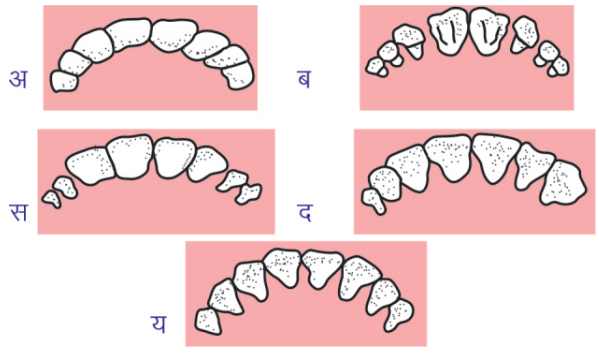

चित्र 15.3 कर्तन दाँतों को देखकर गाय, भैंसो की आयु ज्ञात करना

तालिका 15.2
गाय, भैसों के विभिन्न दाँत तथा उनके निकलने का समय

निकलने का समय	काटने वाले दाँत	अग्रचर्वण एवं चर्वण दाँत
जन्म से प्रथम सप्ताह दूसरा सप्ताह तीसरा सप्ताह चौथा सप्ताह एक माह 6 माह तक	अस्थायी प्रथम जोड़ी अस्थायी दूसरी जोड़ी अस्थायी तीसरी जोड़ी अस्थायी चौथी जोड़ी	सभी अस्थायी अग्रचर्वण चर्वण दाँत का पहला स्थायी जोड़ा अर्थात कपोल दाँतों का चौथा स्थायी जोड़ा
1½ वर्ष		चर्वण दाँत का दूसरा स्थायी जोड़ा
2–2½ वर्ष	स्थायी प्रथम जोड़ी	चर्वण दाँत का तीसरा जोड़ा
2¼– 2½ वर्ष	– –	अग्रचर्वण दाँतों का पहला एवं दूसरा जोड़ा स्थायी
2½–3 वर्ष	स्थायी दूसरी जोड़ी	– –
3–3½ वर्ष	स्थायी तीसरी जोड़ी	अग्रचर्वण दाँतों का तीसरा जोड़ा स्थायी
4–4½ वर्ष	स्थायी चौथी जोड़ी	– –

राजस्थान की अर्थव्यवस्था में भेड़, बकरी पालन व्यवसाय का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिये गाय, भैसों के साथ भेड, बकरियों की आयु के निर्धारण की जानकारी भी आवश्यक है। भेड़ बकरियों का दन्त सूत्र एवं दन्त विन्यास भी गाय, भैंस के दन्त सूत्र एवं दन्त विन्यास के समान ही होता है तथा इनमें दाँतों की कुल संख्या 32 भी गाय, भैंसों के समान ही होती है। लेकिन इनके निकलने, घिसने एवं गिरने का समय, गाय, भैंसों से भिन्न होता है जो आगे तालिका नं0 15.3 में दिया गया है।

तालिका 15.3 भेड़ों के दाँत निकलने की आयु

संभावित आयु (महीनों में)	कर्तन दाँतों की स्थिति
जन्म के समय	0 से 2 जोड़ी अस्थायी
6–10	सभी अस्थायी निकल आते हैं।
14–20	प्रथम (केन्द्रिय) जोड़ी स्थायी
21–25	द्वितीय (मध्य) जोड़ी स्थायी
26–30	तृतीय (पार्श्व) जोड़ी स्थायी
30–36	चौथी (कोने वाली) जोड़ी स्थायी

भेड़ बकरियों को पाँच वर्ष की आयु में प्रौढ़ माना जाता है। बकरियों में एक वर्ष की आयु में सभी अस्थायी कर्तन दाँत निकल आते हैं। चौदह माह की उम्र में प्रथम (केन्द्रीय) जोड़ी अस्थायी दाँत गिर जाते हैं और उनके स्थान पर प्रथम (केन्द्रीय) जोड़ी स्थायी दाँत निकल आते हैं, इसके बाद द्वितीय (मध्य) जोड़ी, तृतीय (पार्श्व) जोड़ी तथा चौथी (कोने वाली) जोड़ी, अस्थायी दाँत गिर कर उनके स्थान पर क्रमशः तीसरे, चौथे तथा पाँचवें वर्ष की आयु में स्थायी दाँत निकल आते हैं। पाँच वर्ष की उम्र के बाद ये स्थायी दाँत घिसने शुरू हो जाते है और बकरी में तेजी से बुढ़ापा आने लगता है।

15.2 भार ज्ञात करना (Weight Determination)

पालतू पशुओं के उत्तम प्रजनन, पोषण, प्रबन्धन एवं स्वास्थ्य की रक्षा से सम्बन्धित कार्यों सफलतापूर्वक क्रियान्वयन हेतु शरीर भार ज्ञात होना आवश्यक है। अनुभवी पशु व्यवसायी एवं कसाई पशु को देखकर ही उसके शरीर भार का अनुमान लगा सकते हैं। लेकिन यह कार्य सामान्य पशुपालक के लिए कठिन है। पशुपालकों को विभिन्न उद्देश्यों हेतु पशुओं का वास्तविक शरीर भार ज्ञात करना पड़ता है।

पशुओं का शरीर भार ज्ञात करने के उद्देश्य :

1. वयस्क कटिया/बछिया (Heifer)का प्रजनन योग्य होना उसकी आयु की अपेक्षा उसके शरीर भार पर निर्भर करता है। अतः समय पर प्रजनन कराने हेतु उसका शरीर भार ज्ञात किया जाता है। जैसे कटिया (Buffalo Heifer) का शरीर भार 250–270 किलोग्राम होने पर वह प्रजनन योग्य हो जाती है।
2. सन्तुलित आहार के निर्धारण हेतु शरीर भार का ज्ञात होना आवश्यक है।
3. वृद्धि करने वाले पशुओं में नियमित वृद्धि की जानकारी हेतु एवं उनकी वृद्धि दर ज्ञात करना। एक बछड़ी का शरीर भार प्रतिदिन औसतन 400–500 ग्राम बढ़ता है।
4. भेड़, बकरी, सूअर को कट्टी घर (Slaughter House) भेजने से पूर्व शरीर का भार ज्ञात करना।
5. शरीर का भार ज्ञात कर पशु के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी हो जाती है। यदि पशु का शरीर भार कम हो रहा है तो परजीवियों के संक्रमण, आहार में पोषक तत्वों की कमी या शरीर भार कम करने वाली बीमारियों जैसे–जोहंसन रोग,टी.बी आदि की सम्भावना का अनुमान होता है।
6. अनुसंधान कार्यों हेतु शरीर का भार ज्ञात करना।
7. शरीर भार के आधार पर दवाई की मात्रा निर्धारित की जाती है।

1. सूत्र द्वारा भार ज्ञात करना :– पशुओ का शरीर भार उस पशु के शरीर की विभिन्न मापों जैसे लम्बाई, ऊँचाई,

उदर घेरा, हृतघेरा (Chest Girth) पर निर्भर करता है। इन शारीरिक मापों के आधार पर विभिन्न वैज्ञानिकों एवं संस्थानों ने शरीर भार ज्ञात करने के लिये विभिन्न सूत्र बनाये हैं, जिनके द्वारा पशुओं के शरीर का अनुमानित भार ज्ञात कर लिया जाता है। सूत्र द्वारा भार ज्ञात करने से पूर्व भार ज्ञात करने वाले को पशु शरीर की विभिन्न मापें कैसे ली जाये यह जानकारी होनी चाहिये। ये मापें निम्न प्रकार ली जाती हैं:–

लम्बाई (Length): कंधे के अग्रिम बिन्दु(Point of Shoulder) से अपलास्थि बिन्दु (Point of Pine bone) तक पशु की लम्बाई। यह लम्बाई फीता द्वारा माप ली जाती है।

हृतघेरा (Chest Girth): सीने के चारों ओर की परिधि हृतघेरा या हृदय गर्त कहलाती है, जिसे फीते (Tape) द्वारा माप लिया जाता है।

उदर घेरा (Abdominal Girth): जांघ के जोड़ (Stiffle Joint) के आगे से पेट के चारों ओर का घेरा उदर घेरा होता है, इसे भी (Tape) द्वारा माप लिया जाता है।

(i) **शेफर का सूत्र (Shaeffer's Formula):** गाय एवं भैंस का शरीर भार इस सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है।

$$\text{पशु का भार (पौण्ड में)} = \frac{(\text{लम्बाई इन्चों में}) \times (\text{हृतघेरा इन्चों में})^2}{300}$$

महत्वपूर्ण बिन्दू

1. पशुओं की आयु ज्ञात करने के चार तरीके हैं– पशु की शारीरिक दशा देखकर, खुर देखकर, सीगों द्वारा तथा दाँतों द्वारा।
2. गाय, भैंसों के सींगो में पहला छल्ला तीन साल की उम्र पर बनता है।
3. दाँतों द्वारा पशुओं की आयु ज्ञात करने हेतु मुख्यतः कर्तन दाँतों का ही निरीक्षण किया जाता है।
4. गाय, भैंस, भेड़, बकरी में कुल 32 दाँत होते हैं।
5. कंधे के अग्रिम बिन्दु से अपलास्थि बिन्दु के बीच की दूरी, पशु की लम्बाई कहलाती है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. पशुओं की आयु ज्ञात करने का सबसे अच्छा तरीका है
   (अ) शारीरिक दशा देखकर
   (ब) खुर देखकर
   (स) सींगो द्वारा
   (द) दाँतों द्वारा
2. बछड़े में सभी अस्थायी अग्रचर्वण दाँत निकल आते है
   (अ) 7 दिन में (ब) 14 दिन में
   (स) 21 दिन में (द) एक माह में

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न–

3. गाय, भैंस की औसत आयु कितनी होती है?
4. कील दाँत किन पशुओं में पाये जाते हैं?
5. दन्त्यू पूर की परिभाषा दीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

6. भेड़ में कौन–कौन से दाँत पाये जाते हैं?
7. पशु का शरीर भार ज्ञात करने के लिए शेफर सूत्र लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

8. सींगो द्वारा भैंस की आयु कैसे निर्धारित करते हैं? वर्णन कीजिए।
9. पशुओं का शरीर भार ज्ञात करने के उद्देश्य बताइए।

उत्तरमाला–

1. (द) 2. (द)

अध्याय 16
सामान्य प्रबंध (General Management)

पशुओं की सामान्य देखभाल (General Care of Animals)

भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ लगभग 60 प्रतिशत कार्य पशुओं द्वारा किया जाता है। परन्तु आजकल पशुओं की दशा बहुत ही सोचनीय है, इसका कारण पशुओं को उचित मात्रा में चारा दाना न मिलना और उनकी भली प्रकार से देखभाल न होना है। इससे पशुओं का स्वास्थ्य गिर जाता है, और उनकी उत्पादन क्षमता में भी कमी आ जाती है। उत्पादन में वृद्धि करने के लिए आवश्यक है कि पशुओं की अच्छी प्रकार से देखभाल की जाए।

दुग्ध–दोहन के सिद्धान्त (Principles of milking)–

पशु के अयन में दूध का बनना एक निरन्तर प्रक्रिया है। अयन में दूध एकत्र करने वाले सभी भागों में दूध भरने के बाद वह क्रिया बहुत धीरे पड़ जाती है। अतः अयन को खाली करना आवश्यक हो जाता है।

गाय के चार थन होते हैं। प्रत्येक थन में एक थन नलिका और एक थन सिस्टर्न (Teat cistern) होता है। थन के भीतर थन सिस्टर्न, ग्रन्थि सिस्टर्न (Gland Cistern) में खुलता है। ग्रन्थि सिस्टर्न गोल या अण्डाकार अथवा अनियमित आकार का रिक्त स्थान होता है। एक ग्रन्थि सिस्टर्न में 500 से 600 ग्राम दूध एकत्रित करने की क्षमता होती है। प्रत्येक ग्रन्थि सिस्टर्न में 12 से 50 तक दूध नलिकाएँ आकर खुलती हैं। प्रत्येक दुग्ध नलिका छोटी–छोटी बहुत सी नलिकाओं में विभाजित होती है। इन छोटी नलिकाओं के सिरे पर एक लोब्यूल (Lobule) होता है। जिस लोब्यूल में बहुत सी एलब्योलाई (Alveoli) होती हैं, जिनमें दूध बनता है।

16.1 दुग्ध दोहन की विधियां (Methods of milking)

दुधारू पशुओं का दूध निकालना एक प्रकार की कला है। इस कला में अनभुवी व्यक्ति शीघ्र ही पूर्ण दूध निकाल सकता है। अनुभवहीन व्यक्ति पशु का पूरा दूध नहीं निकाल सकता है।

''गाय के अयन में एकत्रित दूध को थनों द्वारा बाहर निकालने की क्रिया को ही दुग्ध–दोहन कहते हैं''

दोहन दो प्रकार से किया जाता है –

1. मशीन द्वारा
2. हाथों द्वारा

1. मशीन द्वारा

ज्यादातर पश्चिमी देशों में दोहन का कार्य मशीनों द्वारा किया जाता है। पिछले कुछ वर्षो से भारत में भी मशीन द्वारा दुग्ध दोहन का प्रचलन बढ़ा है। परन्तु यह केवल राजकीय फार्म या बड़े व्यावसायिक डेयरी फार्म तक ही सीमित है। संकर गायों की बढ़ती संख्या के साथ ही मशीन द्वारा दुग्ध निकालने को प्रोत्साहित करना होगा। जहाँ मशीन द्वारा दूध निकाला जाता है। वहाँ विद्युत आपूर्ति निरन्तर होना आवश्यक है।

चित्र 16.1 मशीन द्वारा दूध दोहन

मशीन द्वारा दुग्ध निकालने के निम्न लाभ है –

1. स्वच्छ दूध उत्पादन में सहायता मिलती है।
2. श्रमिकों की आवश्यकता कम पड़ती है।
3. पशुओं की संख्या अधिक होने पर दूध शीघ्रता से निकाला जा सकता है।
4. अधिक दूध देने वाले पशुओं में इस विधि द्वारा दूध दोहन में सुविधा होती है।

दोष

इस विधि का मुख्य दोष है कि यदि पूर्ण दूध निकालने के बाद, मशीन समय पर बंद न हुई तो खून भी निकल सकता है।

2. हाथों द्वारा

इस विधि में थन का अंगूठा और प्रथम अंगुली के मध्य मजबूती से पकड़ा जाता है। इसके बाद थन को उसी स्थिति में नीचे की ओर खींचते हुए एवं ऊपर से नीचे तक हाथ खिसकाते हुए दूध की धार निकालते हैं। इस क्रिया को शीघ्रता से तब तक दोहराते हैं, जब तक थन का सम्पूर्ण दूध न निकल जावे। इस विधि का उपयोग छोटे थन वाली गाय एवं भेड़ों का दूध निकालते समय या अंत में जब थनों में थोड़ा सा दूध शेष रह जाये उसे निकालने के लिए करना चाहिए।

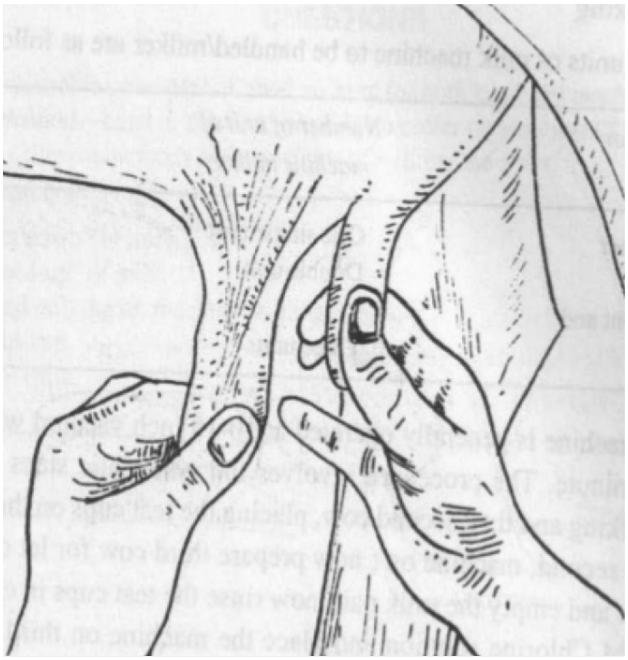

चित्र सं. 16.2 चुटकी विधि द्वारा दुग्ध दोहन

दोष

इस विधि से पशु को दूध दोहते समय कष्ट होता है।

2. अंगूठा दबाकर – इस विधि में चारों अंगुलियों को थन के चारों ओर लगाकर अंगूठा बीच में दबाकर दूध निकाला जा सकता है। इस विधि से दूध निकालते समय पशु को कष्ट होता है। जिससे पशु पूरा दूध नहीं उतारता है। कई बार अंगूठे दबाव के कारण थन को भी क्षति पहुँचती है। इस विधि द्वारा लगातार दूध निकालने से थन खराब होने की संभावना रहती है। कभी–कभी थन में गाँठ पड़ जाती है। इस विधि द्वारा पशु को नही दोहना चाहिए।

चित्र 16.3 अंगूठा दबाकर दूध निकालना

3. पूर्ण हस्त दोहन विधि – इस विधि में हथेली एवं चारों अंगुलियों के बीच में थन दबाकर दूध निकाला जात है। अन्य विधियों की अपेक्षा इस विधि में दूध अधिक तेजी से दुहा जाता है। यह विधि मध्यम व बड़े वाले पशुओं के लिये उपयुक्त है।

चित्र 16.4 पूर्ण हस्त दोहन विधि द्वारा दूध निकालना

1. इस विधि से पशुओं को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है।
2. थनों में गाँठ पड़ने का भय नही रहता है।

16.2 मदकाल की पहचान, जननांगों की जानकारी, प्रजनन विधियाँ (प्राकृतिक एवं कृत्रिम)

प्रजनन प्रबन्ध, पशुधन प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण अंग है। सामान्यतः फार्म पशुओं की प्रजनन सम्बन्धित जानकारी के लिए निम्नलिखित शब्दावली का प्रयोग किया जाता है :–

यौवनारम्भ (Puberty) – मादा जनन अंगों में जब अण्डाशय (Ovary) पूर्णतः विकसित हो जाती है और उसमें अण्डाणुओं के बनने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है, तो मादा का यौवन आरम्भ हो जाता है, इस यौवनावस्था को प्यूबर्टी (Puberty) कहते हैं। इस अवस्था में मादा गर्भधारण योग्य हो जाती है।

यह अवस्था भारतीय गायों में लगभग 24 माह, संकर गायों में 18 माह, भैंसों में 30 माह, बकरियों में 12 माह एवं भेड़ों में 10 माह होती है। **मद चक्र** (Estrus Cycle) – दो मदकालों के मध्य की शारीरिक क्रियात्मक घटनाओं को मदचक्र कहते हैं। यह वह अवधि है जिसमें पशु गर्भधारण कर भ्रण विकास के लिए अपने शरीर में सुरक्षित वातारण प्रदान करते हैं। विभिन्न पशुओं का मदचक्र तालिका 16.2.1 मे दिया गया है।

मद काल (Estrus Period) – यह वह अवधि है जिसमें मादा पशु नर के साथ सम्भोग की इच्छुक होती है। मद को ताव, गर्मी या पाली में आना भी कहते हैं। विभिन्न पशुओं का मदकाल तालिका 16.2.1 में दिया गया है। पशु के मदकाल को पहचानने के लिए प्रातः काल या सांयकाल या दोनों समय निरीक्षण करना चाहिए। झुण्ड में रहने वाले पशुओं के लिए नसबन्दी किए सांड का प्रयोग किया जा सकता है, जिसे टीजर बुल कहते हैं। अन्यथा फार्म पर पाले जा रहे पशुओं का निम्न लक्षणों द्वारा मदकाल में पहचाना जा सकता है।

तालिका 16.2.1 – मादा पशुओं की प्रजनन संबन्धित जानकारी

पशु	प्रथम बार प्रजनन की आयु	मदचक्र की अवधि	मदकाल की अवधि	प्रजनन का उचित समय	गर्भकाल दिन
	भारतीय नस्लें				
गाय	36–40 माह संकर 22 माह	21 दिन	10–24 घंटे	मदकाल के अंतिम 8घंटे	281 दिन
भैंस	36–42 माह	21 दिन	12–36 घंटे	मदकाल के अंतिम 8घंटे	310 दिन
बकरी	15–19 माह	21 दिन	1–2 दिन	मदकाल के अंतिम 8घंटे	151 दिन
भेड़	12–18 माह	16½ दिन	1–1½ दिन	मदकाल के अंतिम 18घंटे बाद	147 दिन

(i) मदकाल की पहचान (Indentification of Estrous Period)

1. पशु बेचैन एवं उत्तेजित होता है।
2. गाय, खाना, पीना छोड़ देती है।
3. गाय बार–बार थोड़ा–थोड़ा पेशाब करती है।
4. मादा नर पशुओं पर चढ़ने लगती है।
5. मादा पशु मुड़–मुड़कर पीछे देखती है।
6. पशु रम्भाता या आवाज करता है।
7. योनि से तरल पदार्थ निकालती है।
8. पूँछ को ऊपर को उठाती है।
9. गुप्तांग (भग) थोड़ा सा फूल जाता है।
10. आँखों में विशेष चमक होती है।
11. एक स्थान पर नहीं ठहरती है।
12. गर्भाशय का द्वार खुला रहता है।
13. दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है।
14. बच्चे को पास नहीं आने देती है।

(ii) जननांगों की जानकारी (Introduction of Genital Organs) –

नर जनन तंत्र (Male Reproductive System)

इस तंत्र के द्वारा शुक्राणुओं का उत्पादन होता है। जिन्हें मादा के जनन पथ में एकत्र कर दिया जाता है। अध्ययन की दृष्टि से सम्पूर्ण जनन तंत्र को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:–

1. प्राथमिक अंग (Primary Organs) – जैसे वृषण (Testis)

2. द्वितीयक अंग (Secondary Organs) – अधिवृषण (Epididymis), शुक्रवाहिनी (Vasdeferens), मूत्राशय (Urethra), शिश्न (Penis)

3. सहायक लैंगिक अंग– शुक्राशय (Seminal Vesicle) पुरःस्थ ग्रन्थि (Prostate gland), कन्द मूलिपथ ग्रन्थि (Cowper"s gland or Bulbo Urethral gland)

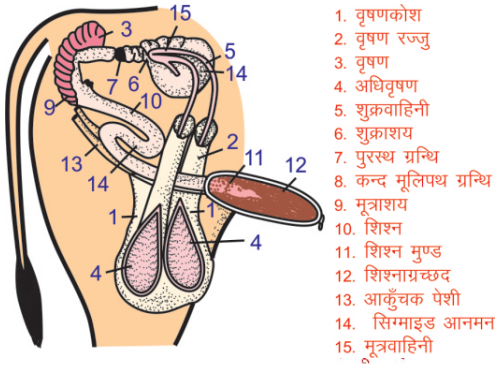

चित्र 16.2.1 नर जनन तंत्र

मादा जनन तंत्र (Female Reproductive System)- है क्योंकि इसमें अण्डाणु बनने के अतिरिक्त बच्चे के पालन पोषण व बढ़ने के लिए भी स्थान होता है। इस तंत्र को अध्ययन की दृष्टि से निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है:–

1. प्राथमिक अंग (Primary Organs) – अण्डाशय अथवा डिम्ब ग्रन्थियाँ (Ovaries)।

2. द्वितीयक अंग (Secondary Organs) – डिम्ब वाहिनी (Oviduct), गर्भाशय (Uterus), गर्भाशय ग्रीवा(cervix), योनि (Vagina), भग (Vulva)।

1. डिम्ब ग्रन्थियाँ (Ovaries) – स्तनधारी मादा पशुओं में प्रायः दो अण्डाशय पाये जाते हैं। यह मादा जननांग का मुख्य अंग है। क्योंकि इनमें डिम्ब व अण्डे (Ova) उत्पन्न होते हैं।इस्ट्रोजन व प्रोजेस्ट्रान नामक हार्मोन का निमार्ण होता है। इनमें सैकड़ों अण्ड कोशिकाएँ होती हैं जो प्रत्येक क्रमशः परिपक्व होकर प्रजनन चक्र के समय बाहर निकलती हैं। परिपक्व डिम्ब के बाहर निकलने की क्रिया को डिम्बाणु क्षरण (Ovulation) कहते हैं।

16.2.1

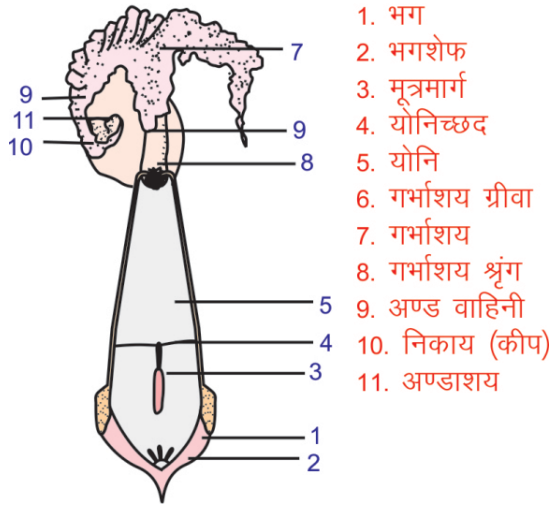

चित्र 16.2.2 मादा जनन तंत्र

2. डिम्ब वाहिनियाँ (Oviducts) - ये डिम्ब ग्रन्थि और गर्भाशय के बीच संपर्क का कार्य करती है इसके सिरों पर पंखों की आकृति की कीप (Infundibulum) होती है। जब डिम्ब ग्रन्थि से डिम्ब निकलता है तो कीप द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। गाय में शुक्राणु और अण्डे का मिलन या निषेचन (Fertilization) पुटन नलिका (Ampulla of Oviduct) में होता है तथा निषेचित डिम्ब (Zygote) धीरे–धीरे गर्भाशय में पहुँचता है। भ्रूण यहीं पर विकसित होता है।

3. गर्भाशय (Uterus)– गर्भाशय के ऊपर से दो मुड़े सृंग (Horn) होते हैं। अंदर वाली परत में से गर्भावस्था (Pregnancy) के समय गर्भाशय ग्रथियाँ निकलती है जिनके द्वारा भ्रूण के आरंभ काल के पोषण के लिए एक प्रकार का द्रव निकलता है जिसे गर्भाशय दुग्ध (uterine milk) कहते हैं।

4. गर्भाशय ग्रीवा (Cervix) - गर्भाशय का सबसे नीचे वाला भाग ग्रीवा कहलाता है और गर्भाशय तथा योनि के मध्य में रहता है। गाय जब गर्मी (Heat) में हो या बच्चा देने के समय में गर्भाशय ग्रीवा का मुँह खुल जाता है, अन्यथा बंद रहता है। गाय में ग्रीवा की लम्बाई 4" और व्यास 1" होता है और इसके द्वारा शुक्राणु (Sperms) गर्भाशय में पहुँचते है।

5. योनि (Vagina) – यह एक नलिकाकार अंग है जो गर्भाशय को भग से जोड़ती है फार्म पर पाये जाने वाले पशुओं में यह मलद्वार के नीचे स्थित होती है। साँड द्वारा मैथुन के समय वीर्य इसमें छोड़ा जाता है। इसके अतिरिक्त प्रसव के समय बच्चा इसी मार्ग से बाहर आता है।

6. भग (Vulva)- भग मादा जनन पथ का सबसे बाहर खुलने वाला भाग है।

(iii) प्रजनन विधियाँ (Methods of breeding)

पशुओं को गर्भित करने की दो विधियाँ प्रचलित है–

1 प्राकृतिक प्रजनन विधि

2. कृत्रिम प्रजनन या कृत्रिम गर्भाधान विधि

1. प्राकृतिक प्रजनन विधि (Natural Breeding)– जैसा कि नाम से स्पष्ट है प्राकृतिक विधि, प्रकृति द्वारा बनाई गई है। इसमें प्रकृति, नर एवं मादा पशुओं को योग्य बनाती एवं चेतना उत्पन्न करती है कि ये दोनों आपस में समागम (sexual contact) करके नये जीव उत्पन्न कर सकें। पशु प्रजनन का सबसे सरल तरीका प्रकृति द्वारा बनाया गया है। इस विधि के द्वारा सभी श्रेणी के पशु प्रजनन करते हैं।

2. कृत्रिम प्रजनन या कृत्रिम गर्भाधान विधि (Artificial Breeding) – नर पशु का वीर्य प्राप्त करके मादा के ऋतुकाल (Heat Period) में आने पर एक विशेष प्रकार की पिचकारी के द्वारा वीर्य को मादा की जननेन्द्रिय में पहुँचाना कृत्रिम गर्भाधान कहलाता है।

भारतवर्ष में इस विधि का प्रचलन स्वतंत्रता के पश्चात् प्रारम्भ हुआ। आज भी इस विधि का उपयोग जितना होना चाहिए था उतना नहीं हो पा रहा है। इसके मुख्य कारण हैं– उन्नत साँडों का अभाव साधनों का अभाव, किसानों को इस विधि की सही व पूरी जानकारी न होना, सुनियोजित प्रजनन कार्यक्रम न होना आदि।

प्राकृतिक गर्भाधान की तुलना में कृत्रिम गर्भाधान विधि के अनेक लाभ हैं, जो नीचे दिये जा रहे हैं –

1. प्राकृतिक प्रजनन द्वारा एक वर्ष में एक साँड द्वारा 60–100 गायें गर्भित कर सकता है। जबकि कृत्रिम गर्भधान द्वारा 1000 या अधिक गायें गर्भित कराई जा सकती है।
2. वीर्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमता से ले जाया जा सकता है।
3. उत्तम नस्ल के साँड के उपलब्ध न होने पर वहाँ उनके वीर्य का उपयोग किया जा सकता है।
4. कृत्रिम ढंग से पशु सुधार करने पर थोड़े ही साँडों द्वारा काम चल जायेगा।
5. इस विधि से प्रशिक्षित साँडों का प्रयोग होने के कारण मादाओं को जननेन्द्रिय रोग होने की आशंका नहीं होती है।
6. कृत्रिम गर्भाधान विधि से बड़े साँडों का वीर्य छोटी गाय पर प्रयोग में लाया जा सकता है।
7. इस प्रणाली में जो गाय लूली, लंगड़ी या चोट इत्यादि लग जाने से प्राकृतिक संभोग के लिए अयोग्य होती है, उन्हें भी गर्भित करके बच्चे लिए जा सकते हैं।
8. इस विधि द्वारा प्रजनन सम्बन्धित पूर्ण लेखा जोखा रखा जा सकता है।
9. विदेशों से भी श्रेष्ठ एवं चयनित साँडों का वीर्य आयात कर प्रयोग में लिया जा सकता है।
10. पशु पालक को इस विधि में साँड रखने की आवश्यकता नहीं होती है। इस विधि में निम्न दोष या कमियाँ हैं–
1. इसमें प्रशिक्षित एवं अनुभवी व्यक्ति चाहिए।
2. इस विधि से पशु को गर्भित कराने में समय एवं साधन अधिक चाहिए।
3. कृत्रिम योनि मूल्यवान होती है।

कृत्रिम गर्भाधान द्वारा पशुओं को गर्भित करने की विधि का अध्ययन हम निम्न चरणों में करते हैं –

1. वीर्य को एकत्रित करना।
2. वीर्य का परीक्षण।
3. वीर्य का तनुकरण।
4. वीर्य का भण्डारण।
5. मादा में वीर्य सेंचन।

लेकिन इस पुस्तक में केवल मादा में वीर्य सेंचन का ही अध्ययन करेंगे।

(iv) मादा में वीर्य का सेंचन (Insemination in Female) – गाय एवं भैंस को गर्भित करने के रेक्टोवेजाइनल विधि का अधिक प्रयोग करते हैं। इसमें एक हाथ मलद्वार में डालकर गर्भाशय ग्रीवा को बाहर से पकड़ लेते हैं तथा दूसरे हाथ से जीवाणु रहित प्लास्टिक की पिपेट योनि में धीरे–धीरे डालते है। पिपेट का एक सिरा गर्भाशय ग्रीवा तक पहुँचना चाहिए। तथा उसके बाहरी सिरे से 0.5–2 मिली. वीर्य को पिचकारी द्वारा अंदर पहुँचा देते हैं। इस प्रकार पशु को कृत्रिम विधि से गर्भित किया जाता है। भेड़ बकरी के लिए वेजाईनल स्पेकुलम विधि प्रयोग में ली जाती है।

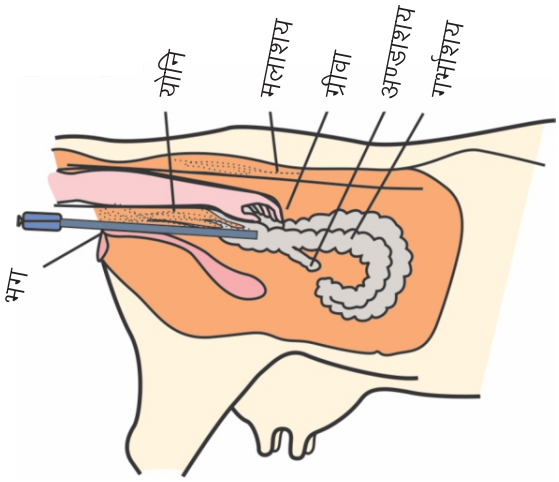

चित्र सं. 16.2.3 गाय को गर्भित करने की रेक्टोवेजाइनल विधि

गर्भाधान का उचित समय –

गर्भाधान का उचित समय मालूम कर लेना बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। इसको मालूम करने के लिए निम्नाकिंत बातों का पूर्ण ज्ञान होना जरूरी है।

1. गाय के जनन अंग में अण्डाणु (ovum) के जीवित रहने की अवधि 120 घंटे मानी गई है।
2. गाय के जनन अंग में शुक्राणु की जीवन अवधि 24 से 30 घंटे।
3. गाय के जनन अंग में शुक्राणु की विकास अवधि 6 घंटे।
4. ऋतुकाल अवधि प्रारंभ, बीच में या अंतिम पशुओं के गर्भाधान करने का समय प्रायः सभी पशुओं में एक समान नहीं है। गाय के ऋतुमयी होने के 4–8 घंटे बाद गर्भित करने से उत्तम परिणाम प्राप्त हुए है। वैसे 8 से 20 घंटे बाद तक गर्भित कराने से भी परिणाम मिले हैं। मदकाल के प्रारंभ होने के 12 घंटे पश्चात् ही पशु को गर्भित करावें, क्योंकि इस अवधि में पशु के गर्भ ठहरने की संभावनाएँ अधिक रहती है। इसलिए जो पशु मदकाल के प्रथम लक्षण यदि सायंकाल दृष्टिगत हो तो मद में आये पशु को प्रातःकाल कराने के बजाय 12 घंटे के अंदर से दो बार गर्भाधान कराने से गर्भ ठहरने की संभावनाएँ कहीं अधिक बढ़ जाती हैं। गाय में मदकाल के लक्षण प्रकट होते ही उसे तुरन्त निकटवर्ती कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र पर ले जाकर गर्भित कराना चाहिए। गाय, भैंस को ब्याने के बाद 3 महीने के भीतर गर्भ धारण करा देना चाहिए।

16.3 गर्भावस्था का सामान्य परीक्षण (General Diagnosis of Pregnancy) – गर्भधारण की पहचान करना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा दुग्ध उत्पादन में कमी हो सकती है। इसलिये गर्भधारण के पश्चात् पशु में निम्न लक्षण प्रकट होने लगते हैं–

1. गाय 21 दिन के बाद दुबारा ऋतुमयी नहीं होती है।
2. गाय का शरीर तथा अयन समय के साथ बढ़ता है।

3. गाय शांत स्वभाव रहती है व साँड के पास नहीं जाती है।
4. 3–4 महीने की गर्भावस्था में पेट में बच्चा हिलता अनुभव होता है।

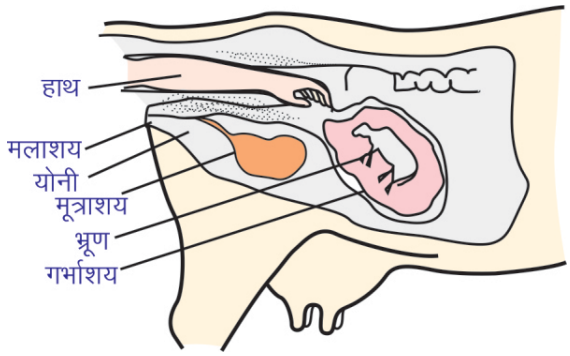

चित्र सं. 16.3.1 गर्भ परीक्षण की रेक्टल पाल्पेशन विधि

साधारणतः यदि मादा गर्भाधान के 19–21 दिन पश्चात् वापस मद में नहीं आती है। तब गर्भ ठहरने की संभावना बनती है। इसकी पुष्टि के लिए पशु के गर्भाधान के 60 दिन पश्चात् गर्भधारण की जांच की जाती है। इसके लिए रेक्टम पाल्पेशन विधि प्रचलित है। इस विधि द्वारा एक हाथ मे रबर का दस्ताना पहनकर तथा साबुन लगाकर पशु के रेक्टम में हाथ डालकर गर्भाशय को छूते हैं। यदि गर्भाशय में एक छोटी सी वस्तु का आभास हो तो समझना चाहिए कि पशु ग्याभिन है।

16.4 गर्भावस्था एवं प्रसव के समय पशु की देखभाल (Care of Animals During Pregnancy and parturition)

– मादा पशुओं (गाय, भैंस) में मदचक्र का बंद हो जाना, पेट का आकार बढ़ना, शरीर का भार बढ़ना, अयन के आकार का बढ़ना, शरीर में शिथिलता आना थनों का फूल जाना एवं दुग्ध उत्पादन घटना व बंद होना आदि पशु के गर्भावस्था के लक्षण है।

जब पशुपालक को यह पता चल जाये कि गाय गर्भवती हो गई है तो उस समय गाय (मादा) की देखभाल करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. गार्य के ब्याने के 7–9 सप्ताह पूर्व दूध निकालना बंद कर देना चाहिए। ताकि पशु का दूध सूख जाये।
2. गर्भवती गाय से उदारता का व्यवहार करना चाहिए।
3. गर्भकाल के अंतिम तीन माह में लगभग एक किलो ग्राम अतिरिक्त दाना देना चाहिए।
4. गाय को भगाना नहीं चाहिए और न ही अधिक परिश्रम कराना चाहिए।
5. गर्भ के विकास व गाय के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए सन्तुलित आहार देना चाहिए।
6. खनिज लवण उचित मात्रा में देना चाहिए।
7. पाचनशील भोजन देना चाहिए।
8. गर्भवती गाय को अन्य गायों से अलग कर देना चाहिए।
9. गाय को प्रसव के दिन से 15–20 दिन पूर्व बाहर चरने भेजना बंद कर देना चाहिए।
10. चिकने फर्श पर घास, फूस आदि बिछाकर रखना चाहिए।
11. गाय को गर्म वस्तुएँ नहीं खिलानी चाहिए।
12. गाय को गर्मी–सर्दी से बचाना चाहिए।
13. ब्याने के लगभग एक सप्ताह पूर्व 50–100 ग्राम अजवायन प्रतिदिन खाने के तेल के साथ देना चाहिए।

प्रसव के लक्षण

गाय, भैंस के ब्याने की पहचान हर पशु पालक के लिए आवश्यक है। ब्याने से पूर्व निम्न लक्षण प्रकट होते हैं –

1. गाय बार–बार उठती और बैठती है।
2. गाय के थन एवं अयन फूल जाते हैं तथा भग पर झुर्रिया पड़ जाती हैं।
3. गाय बार–बार मूत्र त्याग करती है एवं गोबर पतली अवस्था में करती है।
4. गाय चारा दाना खाना बंद कर देती है।
5. प्रसव के पूर्व योनि से चिकना तथा लार के समान लिसलिसा पदार्थ निकलना प्रारम्भ हो जाता है।
6. गाय बार–बार लात झटकती है।
7. पशु के पुट्ठे ढीले पड़कर धंस से जाते हैं।
8. अयन पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है तथा उसमें खीस भर जाता है।
9. प्रसव के समय सर्वप्रथम जब थैली दिखाई पड़ती है, इसी के साथ प्रसव क्रिया शुरू हो जाती है।

प्रसव के समय देखभाल

1. प्रसव के समय सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
2. गाय के नीचे पुआल या रेत बिछा देनी चाहिए।
3. पशु की हर समय निगरानी रखनी चाहिए व प्रसव के लक्षण प्रकट होने पर सहायतार्थ तैयार रहना चाहिए।
4. प्रसव के समय पशु को अनावश्यक रूप से न छेड़े अपितु उसे स्वाभाविक रूप से ब्याने देना चाहिए।
5. जब थैली दिखने के एक घण्टा पश्चात् तक यदि बच्चा बाहर न आवे तो बच्चे को निकालने में पशु की सहायता करें या पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।
6. जिन पशुओं में बच्चे को स्तनपान नहीं करने देना है उसके बच्चे को पैदा होते ही माँ से अलग कर देना चाहिए तथा उसकी माँ की आंखों पर पट्टी या कपड़ा बँध दिया जाता है जिससे माँ उसे देख न सके, नहीं तो दूध देने में पेरशान करेगी। ऐसे बच्चे को अलग से दूध पिलाकर पाला जाता है।
7. ब्याने के ठीक पश्चात् गाय और बछड़े को सर्दी से बचाना

चाहिए।

8. पशु के अयन के तनाव को कम करने के लिए थोड़ी देर बाद दुह लेना चाहिए।

9. प्रसव उपरान्त जेर (Placenta) के गिरने का पूरा ध्यान रखिये और जब तक यह अपने आप न गिर जाये पशु को खाने के लिए कुछ मत दीजिए। सामान्यतः जेर निश्कासन में 2 घंटे का समय लगता है। जेर के न गिरने पर पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।

10. जेर के गिर जाने पर उसे हटा देवें। उसे पशु न खा जावे अन्यथा उसका दूध उत्पादन कम पड़ जायेगा। उसे दूर स्थान पर गड्ढा खोदकर गाड़ देना चाहिए।

11. प्रसव के पश्चात् जननांगों के बाहरी भाग और पूँछ को गुनगुने पानी से जिसमें पोटैशियम परमैंग्नेट (लाल दवा) के कुछ दाने पड़े हो धोना चाहिए।

12. प्रसव के तुरंत बाद गाय को गुड़, अजवायन, सौंठ और मेथी पानी में उबालकर देनी चाहिए।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. गाय के अयन में एकत्रित दूध को थनों द्वारा बाहर निकालने की क्रिया को ही गौ दोहन कहते हैं।

2. दूग्ध दोहन कार्य शीघ्र (औसतन 5 मिनट) में पूर्ण कर लेना चाहिए।

3. हाथों द्वारा दूध निकालने की तीन विधियाँ – 1 चुटकी द्वारा 2 अंगूठा दबाकर 3 पूर्ण हस्त दोहन विधि।

4. मादा पशुओं में मदचक्र का बंद हो जाना, पेट का आकार बढ़ना, शरीर में शिथिलता आना, शरीर का भार बढ़ना, अयन के आकार बढ़ना, थनों का फूल जाना एवं दूध उत्पादन घटना व बन्द होना आदि पशु में गर्भावस्था के लक्षण हैं–

5. प्रसव के निम्न लक्षण होते हैं–

प्रसव के पूर्व योनि से चिकना तथा लार के समान लिसलिसा पदार्थ निकलना प्रारम्भ हो जाता है, बेचैनी के कारण कभी उठना कभी बैठना शुरू हो जाता है, पशु के पुट्ठे ढीले पड़कर धस से जाते हैं।

6. प्रसव के पश्चात् जननांगों के बाहरी भाग और पूँछ को गुनगुने पानी से जिसमें पोटैशियम परमैंग्नेट (लाल दवा) के कुछ दाने पड़े हों, धोना चाहिए।

7. गाय को ब्याने के 60 से 90 दिन के भीतर ही गर्भधारण कर लेना चाहिए। ऐसा नहीं होता है तो इसके लिए उचित उपाय किये जाने चाहिए।

8. यौवनारम्भ (Puberty) वह अवस्था है, जिसमें पशु लैंगिक दृष्टि से प्रौढ़ हो जाता है और उसमें द्वितीय लैंगिक लक्षण आ जाते हैं। यहाँ लैंगिक प्रौढ़ता का अर्थ पशु का प्रजनन योग्य होने से है। इस अवस्था में प्रजनन अंगों का आकार बढ़ जाता है।

9. यौवनावस्था भारतीय गायों में 24 माह, संकर गायों में 18 माह, भैंसों में 30 माह, बकरियों में 12 माह एवं भेंड़ों में 10 माह होती है।

10. दो मदकालों के मध्य की शरीरिक क्रियात्मक घटनाओं को मदचक्र कहते हैं।

11. जब मादा पशु नर पशु के साथ संभोग की इच्छुक होती है, तब इस अवधि को मदकाल कहते हैं। मदकाल को गर्मी, ताव या पाली में आना कहते हैं।

12. वृषण (Testis) नर पशु का प्रमुख प्रजनन अंग हैं। इसमें शुक्राणुओं एवं नर हार्मोन टेस्टोस्टेरॉन का निर्माण होता है। इस हार्मोन द्वारा नर में लैंगिक गुण विकसित होता है।

13. पशुओं को गर्भित करने की दो विधियाँ प्रचलित हैं–

1. प्राकृतिक प्रजनन विधि
2. कृत्रिम प्रजनन या कृत्रिम गर्भाधान विधि

14. गर्भाधान के लिए मादा पशु के मदकाल के प्रारम्भ होने के 12 घंटे पश्चात् ही पशु को गर्भित करायें क्योंकि इस अवधि में पशु के गर्भ ठहरने की संभावनाएँ अधिक रहती है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. भारतीय गायों में यौवनावस्था होती है।
   (अ) 8 माह (ब) 16 माह
   (स) 24 माह (द) 32 माह

2. मादा पशु (गाय/भैंस) के मदकाल के प्रारंभ होने के कितने घंटे बाद गर्भित करावें?
   (अ) 6 घंटे (ब) 12 घंटे
   (स) 18 घंटे (द) 24 घंटे

3. गाय को ब्याने के कितने दिनों के भीतर ही गर्भधारण कर लेना चाहिए?
   (अ) 40–50 दिन (ब) 50–60 दिन
   (स) 60–90 दिन (द) 100–110 दिन

4. हाथों द्वारा दूध दोहन की सर्वोत्तम विधि है।
   (अ) चुटकी द्वारा (ब) पूर्ण हस्त दोहन विधि
   (स) अंगूठा दबाकर (द) उपरोक्त में से कोई नही

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

5. नर पशु का प्रमुख प्रजनन अंग होता है।
6. पशुओं को गर्भित कराने की सर्वोत्तम विधि है।
7. भारतीय गायों का गर्भकाल कितने दिनों का होता है?
8. भैंसों का गर्भकाल कितने दिनों का होता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

9. गर्भाधान का उचित समय क्या है?
10. गर्भाधान का परीक्षण क्यों और किस प्रकार करते है?
11. गाय में प्रसव के लक्षण लिखिए।

निबंधात्मक प्रश्न–

12. मदकाल से आप क्या समझते हैं? मदकाल के लक्षणों का वर्णन कीजिए।
13. नर प्रजनन तंत्र का रेखाकिंत चित्र बनाकर उसके विभिन्न अंगों को दर्शाते हुए उनका संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
14. मादा प्रजनन तंत्र का रेखाकिंत चित्र बनाकर उसके विभिन्न अंगों को दर्शाते हुए उनका संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
15. कृत्रिम गर्भाधान से आप क्या समझते हैं? इसके लाभ लिखो। इसके विभिन्न चरणों (Steps) के नाम लिखिए।
16. गर्भवती गाय की देखभाल करते समय किन–किन बातों को ध्यान में रखते हैं? गर्भवती गाय के क्या लक्षण होते हैं? वर्णन कीजिए।
17. प्रसव के समय एवं प्रसव के बाद गाय की देखभाल के लिए किन–किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए?
18. निम्नलिखित में अंतर बताओं –

1. मदचक्र और मदकाल
2. प्राकृतिक गर्भाधान और कृत्रिम गर्भाधान

19. हस्त दोहन की विभिन्न विधियों का वर्णन करो। कौनसी विधि उत्तम है ओर क्यों ?
20. गौ दोहन के सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला–

1. (स) 2. (ब) 3. (स) 4. (ब)

अध्याय 17
पशु पोषण (Animal Nutrition)

17.1 पशुओं को खिलाने के सामान्य सिद्धान्त (General Principles of animal feeding)- पशुओं को आहार इस तरह से खिलाया जाना चाहिए कि पशु के लिए सभी आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति हो जाए एवं उपलब्ध अवयव भी पूर्ण रूप से उपयोग में आ जाए। अतः हमें चारा व दाना इस तरह से तैयार करके देना चाहिए कि पशु की उम्र व आवश्यकता के अनुसार उसकी पूर्ति हो जाए एवं आर्थिक रूप से महँगा भी न पड़े।

पशुओं को आहार देने से पूर्व निम्नलिखित जानकारियां आवश्यक है:–

1. आहार – पशु को 24 घंटे में जो भी कुछ खाने को दिया जाता है वह आहार कहलाता है।

2. भोज्य पदार्थ – वे सभी चारे व दानें जो पशु को खिलाये जाते हैं। आहार के किसी एक अवयव को भोज्य पदार्थ कहते हैं।

3. पोषक तत्व – आहार में पाये जाने वाले वे सभी अवयव जो पशु के जीवन के लिये आवश्यक होते हैं। जैसे–कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण, विटामिन एवं पानी।

4. सन्तुलित आहार – ऐसा आहार जिसमें सभी पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में एवं सही अनुपात में विद्यमान होते हैं जिनकी आवश्यकता पशुओं को अपने जीवन निर्वाह व उत्पादन के लिये प्रतिदिन होती है।

5. जीवन निर्वाह आहार – आहार की वह मात्रा जिसे पशुओं को स्वस्थ व शरीर के तापक्रम व भार को यथावत बनाये रखने हेतु दी जाती है।

6. उत्पादन आहार– आहार की वह मात्रा जो पशु को जीवन निर्वाह के अतिरिक्त उत्पादन कार्यों के लिए दी जाती है उदाहरण दूध उत्पादन हेतु आहार, माँस उत्पादन हेतु दिया जाने वाला आहार, प्रजनन, वृद्धि, ऊन उत्पादन, अण्डा उत्पादन व अन्य कार्यों के लिए दिया जाने वाला आहार।

आहार को तैयार करना (Preparation of feeds for feeding)- पशुओं को आहार खिलाने के कई तरीके हैं। पशु को कितना चारा व कितना दाना उसकी आवश्यकता के अनुसार खिलाना है यह निश्चित करके पशु की नाँद में अच्छी तरह मिलाकर डाला जाता है। आहार जितना बारीक होगा उतना ही अच्छा होगा। आहार खिलाने की परिस्थिति व समय के अनुसार आहार को पशु की नाँद में डाला जाता है जिसे पशु आसानी से मन से खा सके। आहार तैयार करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वह आसानी से उपलब्ध हो एवं आर्थिक रूप से आहार तैयार करना मँहगा भी नहीं हो।

चारे की कुट्टी बनाना– रोमांथी पशुओं को जब हरा चारा मक्का व ज्वार के चारे को खिलाया जाए तो कुट्टी कर लेना अच्छा रहता है। जिससे तने व डंठलो का सद–उपयोग हो जाता है। सूखी कड़वी को भी कुट्टी बनाकर हरे चारे की कुट्टी के साथ मिलाकर खिलाना चाहिये। ज्यादा बारीक कुट्टी बूढ़े व घिसे दाँत वाले पशुओं को ही खिलाना चाहिए।

दानों का दलिया बनाना– कुछ बीज रूप दानों की ऊपरी परत इतनी कठोर होती है कि वह आसानी से पच नहीं पाती है अतः इनको सीधे खिलाने पर गोबर में वैसे ही निकल जाते है। अनाजों का दलिया बनाकर भिगोकर देना चाहिए। मध्यम आकार का दलिया खिलाना लाभदायक रहता है।

आहार की टिकियाँ या गोलियाँ बनाकर पशुओं को खिलाना :–'हे' को गोलियों (Pelletes) के रूप में खिलाने से पशु चाव से खाता है एवं 'हे' को संग्रहण के लिए अधिक स्थान की भी आवश्यकता नहीं रहती। गोलियाँ बनाते समय 'हे' व दाने के बारिक मिश्रण को मिलाकर इन्हें तैयार किया जाता है, इससे पशु आहार ज्यादा खाता है पशु शरीर की वृद्धि भी होती है।

आहार को पकाना:– पशुओं को चारा सीधे काट कर खिलाना अच्छा होता है जबकि दाना सीधे नहीं खिलाना चाहिए इसे रातभर भिगोकर या गर्म कर खिलाने से अधिक

लाभ प्राप्त होता है। सोयाबीन को पकाकर खिलाना अच्छा होता है।

"बिनौले की खली में गोसीपाल (Gossypol)नामक टॉक्सीन होता है। इसमें आयरन सल्फेट मिलाने पर घातकता को रोका जा सकता है।"

पशु को आहार देने सम्बन्धित जानकारियाँः–

1. पशु के साथ स्नेह व दयालुतापूर्ण व्यवहार (Kindness in handling and feeding)करना चाहिए व उदारता पूर्वक आहार देना चाहिए।
2. पशुओं को नियमित व सन्तुलित आहार देना चाहिए (Regularity in balanced feeding)
3. लगभग 10 घंटे के अन्तराल पर दिन भर में केवल दो बार भोजन दें ताकि पाचन क्रिया ठीक रहे। निश्चित समय पर ही पशुओं को भोजन दिया जाए।
4. पशुओं को वर्षभर पर्याप्त हरा चारा उपलब्ध कराया जाये।
5. प्रत्येक श्रेणी के पशुओं को अलग–अलग आहार उपलब्ध कराया जाये।
6. पशुओं को चारा–दाना रोजाना नियमित अन्तराल पर ही दिया जाये।
7. पशुओं के आहार में हरा चारा, भूसा, दाना तथा खनिज आदि सभी मिला हो ताकि सभी आवश्यक अवयव उपलब्ध हो सकें।
8. पशुओं को आहार में पोषक तत्व उनकी शरीर की आवश्यकताओं के अनुसार ही दिये जाने चाहिए, आवश्यकता से कम या अधिक खिलाना दोनों ही स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं।
9. चारा वाली नाँद या द्रोण (Trough) आहार देने से पहले पूर्णतः साफ कर लेनी चाहिए ताकि उसमें बची गंदगी साफ हो जाये।
10. पशुओं का आहार एक आदर्श आहार हो जो संतुष्टि प्रदान करने वाला उचित मात्रा में पोषक तत्व, पाचक, स्वास्थ्यवर्धक, दूध में उत्तम सुगन्ध पैदा करने वाला, विभिन्न खाद्य पदार्थों सहित, स्थूल (Bulky) सन्तुलित तथा सस्ता हो।
11. चारे में परिवर्तन या आहार के प्रकार में परिवर्तन धीरे–धीरे करे। एकदम आहार में बदलाव (Sudden Change) हानिकारक है।
12. प्रति गाय व भैंस को प्रतिदिन हरे चारे की मात्रा 15 से 20 कि.ग्रा चारे की किस्म, रसीलापन, पाचकता तथा पशु की आवश्यकतानुसार दी जा सकती है।
13. पशुओं को कभी भी खाली पेट केवल फलीदार(Legumes) हरे चारे न खिलाये जायें इससे आफरा होने का भय रहता है अतः इनके साथ सूखा चारा भी खिलाया जाना चाहिए।
14. पशु की आवश्यकता पूर्ति के लिए चारा कम करके दाना अधिक नहीं खिलाना चाहिये क्योंकि यह आर्थिक रूप से सही नहीं है, ज्यादा चारा व कम दाना एक अच्छा सस्ता उपाय है।
15. 'हे' या पुआल या भूसा जैसे धूलमय (Dusty) चारे दूध निकालते समय नहीं खिलायें, इससे बाड़े में धूलमय वातावरण होने के कारण दूध के अंदर जीवाणु की संख्या बढ़ने से दूध की किस्म खराब होने का भय रहता है।

16. ज्यादातर पशुपालक गायों को दूध निकालते समय खाना खिलाना पंसद करते है। इससे दूध अयन में जल्दी उतर आता है (Stimuls to let down of milk)।

अच्छे आहार के गुण–

1. आहार सन्तुलित हो अर्थात पशु की आवश्यकता के अनुसार सभी अवयव कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा खनिज लवण व विटामिन समुचित मात्रा में आहार में हो।
2. आहार स्वादिष्ट हो एवं संतुष्टि प्रदान करने वाला हो जिससे पशु इच्छा से खा सके। इसके लिए पशु आहार में हरे चारे दाने व सूखे चारे को सम्मिलित करना चाहिए।
3. आहार सुपाच्य होना चाहिए। इसके लिए हरे चारों को पशु आहार में सम्मिलित किया जाना चाहिए। इसमें पशु को सुपाच्य आहार के साथ उचित पोषक तत्व भी मिल सकेंगें।
4. आहार में समुचित रेशे की मात्रा होनी चाहिए। जिसमें पशु के पेट भरने का आभास होता है।
5. आहार सस्ता व सुगमता से उपलब्ध होने वाला होना चाहिए। जिससे पशु के आहार की लागत कम हो सके एवं आहार में हरे चारे व दानों को सम्मिलित कर कम मूल्य में अधिक पोषक तत्व प्राप्त कर सकते है।
6. आहार में विभिन्नता होनी चाहिए। पशु की पसन्द व मौसम के अनुसार आहार बदलते रहना चाहिए।
7. आहार विरेचक होना चाहिए। साइलेज, हरे चारे व गेहूँ का चोकर विरेचक के रूप में जाने जाते हैं।
8. भोजन में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन होनी चाहिए।
9. आहार में खनिज लवणों को विशेष महत्व देना चाहिए। दूध देने वाली गाय को कैल्सियम प्रचुर मात्रा में मिलता रहना चाहिए।

10. पशु को साफ पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध करवाना चाहिए।

17.2 विभिन्न पशुओं का आहार निर्धारण– गर्भवती गाय, दुधारू गाय एवं बैल। (Determination of ration for different animals- pregnant, milking cow and bullock)

पशुओं की समुचित वृद्धि, प्रजनन एवं उनसे पर्याप्त उत्पादन तथा कार्य लेने हेतु सन्तुलित आहार देना अतिआवश्यक है। गर्भवती गाय, दुधारू गाय एवं बैल के लिए सन्तुलित आहार निर्धारण प्रमुख आहारों में पाये जाने वाले तत्वों के आधार पर करना चाहिए। सन्तुलित आहार निर्धारण के नियम– प्रत्येक वर्ग के पशु का सन्तुलित आहार ज्ञात करने के लिए कुछ निश्चित नियमों का पालन करना चाहिए, जो कि निम्न प्रकार है।

1. शुष्क पदार्थ की मात्रा (Amount of Dry Matter) – गाय, बैल, बछिया, बछड़े तथा साँड को 100 किलोग्राम के शरीर भार पर 2.5 किलोग्राम तथा भैंस को 3.0 किग्रा. शुष्क पदार्थ दिया जाना चाहिए।

2. दाने के मिश्रण की मात्रा (Amount of Concentrate Matter)

(अ) **जीवन निर्वाह दाना** – जीवित रहने के लिए गाय, भैंस , बैल एवं साँड को 1.5–2.0 किलोग्राम दाना प्रतिदिन देना चाहिए। यदि पशु को हरी बरसीम, रिजका, दोदालीय 'हे' खिलाई जा रही हो तो जीवन निर्वाह दाना देने की आवश्यकता नहीं होती है।

(ब) **उत्पादन दाना–**

1. दूध उत्पादन के लिए 3 लीटर गाय के दूध पर तथा 2.5 लीटर भैंस के दूध पर 1 किलोग्राम दाना देना चाहिए। गाय की अपेक्षा भैंस के दूध में वसा की मात्रा अधिक होती है।
2. कार्य करने वाले बैलों को प्रतिदिन 1.5 किलोग्राम दाना सामान्य कार्य तथा 2.0 किलोग्राम भारी कार्य के लिए, जीवन निर्वाह में अतिरिक्त दाना देना चाहिए।
3. प्रजनन करने वाले साँडो को 2 किलोग्राम तथा 6 माह या इससे अधिक अवधि की गर्भवती गाय को गर्भ रक्षा हेतु 1.0–1.5 किलोग्राम दाना अतिरिक्त देना चाहिए। जीवन निर्वाह एवं उत्पादन दाना इसमें सम्मिलित नहीं है।

3. चारा मात्रा (Amount of Roughages) - पशुओं को खिलाये जाने वाले चारों में सूखे चारे जैसे भूसा, कड़वी, हे (90% शुष्क पदार्थ) तथा रसीले चारे, जैसे बरसीम, रिजका, मटर, ग्वार एवं जड़े, जैसे गाजर, शकरकन्द आदि (20–25% शुष्क पदार्थ) सम्मिलित हैं। सूखे चारे तथा हरे चारे की मात्रा में लगभग 1 और 3 का अनुपात तथा सूखे चारे और रसीले चारे खिलाने पर 1 और 4 या 5 का अनुपात रखना चाहिए। शुष्क पदार्थ दोनों में बराबर–बराबर देना चाहिए।

4. खनिज लवण (Mineral Matter) – खाद्य पदार्थों से सभी लवण पर्याप्त मात्रा में पशु को नहीं मिल पाते हैं। अतः इन्हें लवण मिश्रण के रूप में दिया जाता है। दूध वाले पशु एवं वृद्धि करने वाले पशुओं के लिए इनका महत्व अधिक है। बाजार में खनिज मिश्रण मेन्डिक, सुद्धिमिडिक, कैटिलमिन आदि नामों से उपलब्ध है। प्रतिदिन 20–25 ग्राम देना चाहिए साथ ही सादा नमक 30 ग्राम प्रति पशु देना चाहिए।

सन्तुलित आहार की गणना के लिए विभिन्न चारा दानों में शुष्क पदार्थ की निम्नलिखित प्रतिशत मानी जाती है। वैसे मौसम तथा फसल की स्थिति के अनुसार घट–बढ़ सकती है।

क्र.सं.	चारे का नाम	शुष्क पदार्थ (प्रतिशत)
1.	सूखी कड़वी, भूसा, हे, पुआल	90
2.	हरी ज्वार, मक्का, बाजरा, जई, सरसों, साइलेज, हरी घासें	30
3.	बरसीम (दिसम्बर से फरवरी तक)	20
4.	बरसीम, रिजका (मार्च, अप्रेल तक) मटर, ग्वार, लोबिया	25
5.	गाजर, गोभी, पत्ते	20
6.	अनाज, खलें, चोकर, चूनी, छिलका	85–90

1. गर्भवती गाय का आहार – (Ration of Pregnant Cow) –गर्भवती गाय को पाँच माह के गर्भकाल के बाद भरपेट अच्छी किस्म का हे घास अथवा अन्य चारा तथा 10 किग्रा हरा चारा प्रतिदिन खिलावें। इन चारों के अतिरिक्त 1 किग्रा दाना खिलावें। गर्भकाल के सातवें माह में दाना बढ़ाकर 1.5 कि.ग्रा आठवें में 2 कि.ग्रा तथा अन्तिम माह में 2.5–3.0 कि.ग्रा प्रतिदिन कर देना चाहिए। सूखी या गर्भवती गायें अपने शरीर भार का 2–2.5 प्रतिशत शुष्क पदार्थ चारे–दाने के रूप में खा लेती है। निर्वाह आहार के अतिरिक्त 50% अलग से पोषक तत्व उपलब्ध करवाने चाहिए। 1–2 कि.ग्रा दाने का मिश्रण अलग से प्रतिदिन दें।

2. दुधारू गाय का आहार – (Ration of Milking Cow) - दूध देने वाली गाय के लिए हरा चारा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे दुग्ध उत्पादन बढ़ता है साथ ही दाने की मात्रा में कटौती कर व्यय कम किया जा सकता है। 15 किग्रा दूध देने वाली गाय को 2/3 भाग अदलहनी व 1/3 भाग दलहनी हरा चारा खिलाना चाहिये। दूध देने वाली गाय के आहार निर्धारण करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाता है–

1. कम लागत पर अधिक दूध पैदा करने के लिए ऋतु अनुसार साल भर अधिक से अधिक हरे चारे का उपयोग करना चाहिए।

2. दानें की लागत मूल्य क्रय करने के लिए अधिक अनुपात में अच्छी किस्म में खाद्य उपजातों जैसे खनिज, चावल की पॉलिश, ग्वार की चूरी, चापड़, दालों की चूरी, मोलासिस, कॉर्न ग्लूटन मील आदि खाद्य अवयवों का उपयोग करें।

3. बहुतायत में उपलब्ध हरे चारे का हे अथवा साइलेज बनावें तथा उन्हें हरे चारों की कमी के समय खिलावें

4. दानें के अवयवों को अलग–अलग दलकर मिलावें, उन्हे पीसें नहीं।

5. पाँच किलोग्राम तक दूध देने वाले दुधारू गाय को भरपेट (40–50 किलोग्राम) मिश्रित फलीदार व बेफलीदार, हरा चारा खिलावें तथा 2 किलोग्राम सूखा चारा साथ में दें।

6. पाँच किलोग्राम से अधिक दूध देने वाली गाय को पेटभर हरा चारा खिलाने के अतिरिक्त 14–15 प्रतिशत प्रोटीन युक्त दाना खिलावें।

3. बैल का आहार (Ration of Bullock) –बैल का आहार उसके जीवन निर्वाह तथा उसके द्वारा किए जाने वाले कार्य पर निर्भर करता है। साामान्यतः बैल को जीवन निर्वाह हेतु पेटभर सूखा चारा खिलाए तथा सीमित मात्रा में हरा चारा भी दें तथा उसके चरने का प्रबन्ध करें। बैल से लिए जाने वाले कार्य के अनुसार उसे निम्न प्रकार दाना खिलाएं।

हल्का कार्य	–	1 से 1.5 किलोग्राम प्रतिदिन
मध्यम कार्य	–	2 से 2.5 किलोग्राम प्रतिदिन
भारी कार्य	–	3 से 4.0 किलोग्राम प्रतिदिन

17.3 चारा संरक्षण (Fodder Conservation) – पशुओं को स्वस्थ्य बनाये रखने व अधिक उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें वर्षभर निरन्तर हरी घास उपलब्ध होती रहे, परन्तु यह हमेशा नहीं हो सकती। वर्षा के साथ ही हरी घास बढ़ती है और जमीन को नमी की कमी व हवा में गर्मी के कारण वह सूख जाती है। इस कमी की पूर्ति के लिए साधनों की उपलब्धता के अनुसार हरा चारा उगाया जाता है, परन्तु अनेक कारणों से वार्षिक चारों की फसलें साल भर उत्पादन नहीं दे सकती हैं। ऋतुओं के अनुसार उन्हें बोया जाता है और उनकी लाभदायक पैदावार विशेष समयावधि में हो पाती है। कमी के समय ही काम आवें, इस कारण हरे चारों व घास का संरक्षण किया जाता है। यह कमी का समय सामान्यतः अक्टूबर से नवम्बर तक अप्रेल से जून माह विशेष रूप से होते हैं। हरे चारों को संरक्षित करने की दो विधियाँ हैं–

1. साइलेज बनान (Silage Making)
2. 'हे' बनाना (Hay Making)

1. साइलेज बनाना (Silage Making)–

पशुओं के आहार में हरे चारे का अपना एक विशिष्ट स्थान है। विशेषकर दूध देने वाले पशुओं के आहार में हरे चारे की उपयुक्त मात्रा होनी चाहिए ताकि उनका भोजन स्वादिष्ट और कोमल बना रहे। पशुपालकों के समक्ष यह समस्या प्रायः अधिक समय तक बनी रहती है कि पशुओं को पूरे वर्ष हरा चारा किस प्रकार उपलब्ध कराया जाए, क्योंकि गर्मी के दिनों में हरा चारा बहुत ही कम मिल पाता है साथ ही उसे उगाने में अधिक व्यय भी होता है। भारत में साइलेज केवल मिलिट्री डेरी फार्म, राजकीय फार्म अथवा किन्हीं एक दो व्यक्तिगत डेरी फार्मो पर बनाया जाता है। एक औसत श्रेणी का पशु पालक भी चारों को सुरक्षित करके प्रयोग नहीं करता है। इसके निम्नलिखित कारण है–

1. पशुपालकों को साइलेज के लाभों का ज्ञान नहीं है।
2. चारों की प्रायः कमी हर समय बनी रहती है।
3. मौसम भी प्रायः प्रतिकूल रहता है।
4. यहाँ का कृषक कृषि कार्य में अधिक व्यस्त रहता है।

साइलेज की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते है कि यह वह दबा हुआ चारा है जिसमें हरे चारें के सभी तत्व मौजूद हों, इसमें किसी प्रकार की सड़न अथवा बुरी गन्ध उत्पादित न हुई हो तथा इसमें रसीलापन हो।

साइलेज बनाने की इस क्रिया को ''साइलोइंग अथवा इन्साइलिंग (Siloing or Ensiling) कहते हैं।

साइलेज बनाने के लाभ–

1. साइलेज के रूप में हरी फसलों को कोमल एवं रसीली अवस्था में काफी समय तक रखा जा सकता है तथा हरे चारे के अभाव में समय कम खर्च में साइलेज से वह कमी पूर्ण की जा सकती है।

2. साइलेज के रूप में फसलों को सुरक्षित करके किसी सीमा तक पोषक तत्वों की मात्रा को नष्ट हो जाने से बचाया जा सकता है, क्योंकि भूसा या कड़वी बनाने से ये तत्व अधिक मात्रा में समाप्त हो जाते हैं।

3. वर्षा ऋतु में जब हरी फसलों या घासों से 'हे' बनाना कठिन होता है, साइलेज बनाया जा सकता है।

4. साइलेज के लिए कटी फसल के साथ खरपतवार भी काट लिए जाते हैं। अतः खरपतवारों का विनाश स्वतः (Weed Control) होता है।

5. किसी क्षेत्र की पक्की फसल को कड़वी के रूप में इकट्ठा करने के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता होती है। जबकि

साइलेज थोड़े स्थान में तैयार कर सुरक्षित रखा जाता है।
6. साइलेज के लिए फसल फूलने की अवस्था पर (Flowering stage) में काट ली जाती है। अतः खेत आगे की फसल बोने के लिए शीघ्र तैयार हो जाता है।
7. फसल तैयार होने से पहले काट लेने पर कीड़े–मकोड़े जो अभी अपनी पूर्ण अवस्था को नहीं प्राप्त हुए हैं, नष्ट हो जाते हैं।
8. साइलेज पशुओं को साल भर खिलाया जा सकता है। यह उत्तम गुणकारक होता है। पशु इसे चाव से खाते हैं।
9. फसलों को सुखाकर संग्रह करने से आग लग जाने या वर्षा से सड़ने का भय बना रहता है परन्तु साइलेज के संग्रह में ऐसी आपत्ति नहीं आती है।

जिन गड्ढों, नालियों अथवा बुर्ज में हरा चारा दबाकर भरा जाता है उन्हें साइलो (Silo) कहते हैं। साइलो कई प्रकार के होते हैं। इनका चलन उस स्थान जलवायु कृषक की आर्थिक दशा तथा पानी के तल के ऊपर निर्भर रहते हैं। साइलो निम्न प्रकार के होते हैं–

(1) साइलो बुर्ज (Silo tower) जमीन के ऊपर बनाये जाते हैं।
(2) साइलो खाई (Silo trench) भूमि के नीचे बनाये जाते हैं।
(3) साइलो गर्त (Silo pit) गोल या चौकोर गड्ढा होता है।

साइलो गर्त तथा खाई जमीन के नीचे तथा साइलो बुर्ज जमीन से ऊपर बनाये जाते हैं। साइलो गर्त तथा खाइयाँ कच्ची अथवा पक्की दोनों प्रकार की बनायी जाती है। भूमि के ऊपर बुर्ज, लकड़ी, ईंट व सीमेंट से बनाये जाते हैं। इसमें हवा का प्रवेश नहीं होना चाहिए। इसमें बीच–बीच में दरवाजे बनाये जाते है तथा ऊपर छप्पर बनाया जाता है।

भारतवर्ष में प्रायः भूमि के नीचे साइलो गर्त व खाइयाँ बनाई जाती हैं। इसकी लम्बाई, चौड़ाई व गहराई पशुओं की संख्या, खिलाने का समय एवं साइलेज की आवश्यक मात्रा के अनुसार रखा जाता है। गहराई उस स्थान के पानी के स्तर का ध्यान रखकर रखी जाती है, जिन स्थानों पर पानी बहुत कम गहराई पर ही होता है वहाँ बुर्ज बनाये जाते हैं।

साइलो पिट प्रायः 8′ x 5′x 4′ के बनाये जाते हैं तथा साइलो बुर्ज 8′–10′ व्यास वाले 20′–22′ ऊँचें बनाये जाते हैं। खाइयाँ प्रायः 8′ गहरी 7′–8′ चौड़ी बनाई जाती हैं।

साइलेज बनाने से पहले कुछ आवश्यक बातें

(1) साइलेज उन फसलों में उत्तम बनेगा जिनमें कार्बोहाइड्रेड की मात्रा अधिक होती है अन्यथा चारा सड़ जायेगा; जैसे– ज्वार, मक्का, जई उत्तम हैं।
(2) साइलेज बनाने वाली फसलों में शुष्क पदार्थ की मात्रा (D.M%) 30–40% से अधिक नहीं होनी चाहिए।
(3) फसल को भरते समय खूब दबाया जाए ताकि बीच में वायु न रहे अन्यथा फसल सड़ जायेगी।
(4) जिन गड्ढों अथवा बुर्ज में फसल को दबाना है उनमें कहीं छेद न हो।
(5) फसल में पर्याप्त नमी तथा कोमलता की भी आवश्यकता है। अतः फसल फूलने की अवस्था में काट ली जाए।

गड्ढों का भरना (Filling of Silo Pits) – अपने देश में साइलेज गड्ढों में ही बनाया जाता है। अतः गड्ढों का वर्षा से बचाव रखा जाता है। फसल को फूल आने की अवस्था में काटा जाता है। अधिक बढ़ जाने पर रेशा की मात्रा बढ़ जाती है। और पाचक तत्व घट जाते हैं। फसल को सुबह काटकर पूरे दिन खेत में छोड़ देते हैं ताकि नमी अधिक मात्रा में कम हो जाए। फसल के गठ्र बनाकर इन्हें गड्ढे में बिछाया जाता है। सबसे नीचे कुछ घास बिछा देते हैं। फसल को मशीन से काट–काट कर भरना उत्तम रहता है।

गड्ढों में फसल को भरते समय खूब दबाया जाता है ताकि बीच–बीच में हवा न रह जाए। चारे को जमीन की सतह से 5′–6′ ऊँचा भरना चाहिए, क्योंकि बाद में इसका स्तर कम हो जाता है। अन्त में ऊपर से कुछ घास डालकर इसे मिट्टी से लीपकर बन्द कर दिया जाता है। जिससे कि कहीं से वायु एवं जल का प्रवेश न हो सके।

जब हरी फसल को काटकर गड्ढों में दबाया जाता है तो पौधों की जीवित कोशिकाएँ श्वासोच्छवास क्रिया करती हैं। वे गड्ढे में बची ऑक्सीजन का प्रयोग कर कार्बन–डाइ–ऑक्साइड विसर्जित करती हैं। इस प्रकार 5 घंटे में जब ऑक्सीजन काम आ जाती है और गड्ढे में लगभग 70–80 प्रतिशत कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की उपस्थिति होने पर फफूँदी (Mould) उत्पन्न नहीं होती है। यदि गड्ढों अथवा बुर्ज में कहीं से वायु प्रवेश कर जाती है तो फफूँदी उत्पन्न होकर चारा सड़ा देती है।

वायु की अनुपस्थिति में बढ़ने वाले जीवाणु (Anaerobic Bacteria) अपनी संख्या में बढ़ते है। ये पौधों में मौजूदा शर्करा (Carbohydrates) पर क्रिया कर कार्बनिक अम्ल मुख्यतः दुग्धाम्ल (Lactic acid) उत्पन्न करते है, इसके अतिरिक्त ऐसिटिक अम्ल व इथाल एल्कोहल भी उत्पन्न होते हैं। इन अम्लों के उत्पन्न होने से सड़न पैदा करने वाले जीवाणु अपनी वृद्धि नहीं कर पाते हैं। जिन चारों में शर्करा कम होते हैं। उनमें अम्ल कम बनने से सड़न वाले जीवाणु अपनी वृद्धि कर जाते हैं। यदि शर्करा अधिक होता है तो साइलेज अधिक खट्टा बनता है। कुछ समय बाद इन अम्लों का बनना रुक जाता है, क्योंकि अम्ल बनाने वाले शुक्राणु अधिक अम्ल बन जाने पर स्वयं वृद्धि करना बन्द कर देते हैं। साइलेज में रासायनिक परिवर्तन बन्द हो जाते हैं। यदि इस समय भी हवा अन्दर चली जाती है तो साइलेज सड़ जाता है अन्यथा काफी समय तक सुरक्षित बना रहता है। अम्ल का उत्पादन पौधों में शर्करा की मात्रा साइलेज बनाने के लिए

उपयुक्त होती है।

साइलेज का वर्गीकरण (Classificiation of Silage)

स्वाद के आधार पर निम्न वर्गीकरण किया जा सकता है–

(1) मीठी साइलेज (Sweet Silage) :– इसमें दुग्धाम्ल की मात्रा अधिक होती है। यह लाभप्रद होता है तथा अम्लीय कम होता है।

(2) अम्लीय साइलेज (Acidic Silage) – इसमें एसिटिक एसिड अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है तथा दुग्धाम्ल की मात्रा कम होती है।

साइलेज को रंग तथा स्वाद के आधार पर निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है–

(1) बदामी गहरी, मीठी साइलेज (Dark Brown sweet Silage)

(2) अम्लीय, कम बादामी वाली साइलेज (Light Brown Acidic Silage)

(3) हरी साइलेज (Green Silage)

(4) अधिक खट्टी साइलेज (More Sour Silage)

(5) फफूँदीयुक्त साइलेज (Mouldy Silage)

(2) 'हे' बनाना (Hay Making)

यह एक ऐसा सूखा चारा है जिनमें पानी की मात्रा कम होती है तथा पोषक तत्वों की मात्रा उस फसल की अपेक्षा अधिक होती है। जिससे यह तैयार की गई। एक उत्तम प्रकार की 'हे' रंग की हरी, पत्तियों युक्त मुलायम तथा उत्तम गन्धयुक्त होती है। उदाहरणार्थ, एक ही घास और उसी की बनी 'हे' का रासायनिक संगठन इस प्रकार होगा।

तालिका 17.3.1 : हरी घास तथा 'हे' का संगठन (प्रतिशत)

हे का प्रकार	जल	कच्ची प्रोटीन	ईथर निष्कर्ष	शर्करा पदार्थ	दुष्पचती तन्तु	लवण
सूडान, हरी घास	76.3	2.0	0.4	10.5	8.5	2.3
सूडान 'हे'	11.0	8.5	0.5	41.5	30.7	6.8

'हे' के प्रकार (Kinds of Hay)

जिस प्रकार की फसलों से 'हे' तैयार की जाती उसे उसी प्रकार की 'हे' कहते हैं। 'हे' निम्नलिखित प्रकार की मानी जा सकती है–

(1) फलीदार फसल वाली 'हे' (Legume Hay) यह प्रायः फलीदार फसलों; जैसे – मटर, लोबिया, बरसीम, रिजका आदि से बनायी जाती है। यह एक उत्तम प्रकार का पशु भोजन है। क्योंकि इनमें निम्न उत्तम गुण पाये जाते हैं।

(अ) इनमें पाचक तत्वों की मात्रा अन्य प्रकार की 'हे' से अधिक होती है।

(ब) पाचक तत्वों में पाच्य प्रोटीन अधिक मात्रा में होती है तथा इस प्रकार की 'हे' की पाच्य प्रोटीन भी उत्तम गुणों की होती है।

(स) उत्तम प्रकार से तैयार की गई इस प्रकार की 'हे' में Vit. 'A' की मात्रा अधिक होती है। साथ ही अन्य विटामिन्स डी और ई भी पर्याप्त मात्रा में होते हैं।

(द) फलीदार हे प्रायः खनिज लवणों विशेषकर कैल्सियम में उत्तम होती है। फॉस्फोरस भी मध्यम मात्रा में होता है।

(य) इस प्रकार की 'हे' अधिक स्वादिष्ट एवं पाचक होती है। ये पाचन प्रणाली पर उत्तम प्रभाव डालती हैं।

(र) फलीदार 'हे' की फसलें शीघ्र और आसानी से उगाई जा सकती हैं। ये भूमि के कटाव को भी रोकती हैं।

(2) फलरहित फसल वाली 'हे' (Non-legume Hay) – इस प्रकार की 'हे' प्रायः विभिन्न हरी घासें जैसे– दूब, नैपियर, सूडान तथा चारे की फसलों; जैसे– ज्वार आदि से तैयार की जाती है। ये फलीदार 'हे' के समान उत्तम ही होती है, परन्तु ये कम स्वादिष्ट होती है। पाच्य प्रोटीन की मात्रा कम तथा खनिज लवण और विटामिन्स भी प्रथम प्रकार की 'हे' से कम पाई जाती है। फिर भी यदि इन फसलों को जल्दी काटकर उत्तम ढंग से 'हे' बनायी जाए तो तत्वों की मात्रा अधिक मिल जाती है। इस प्रकार की 'हे' बनाने में हानि कम होती है।

(3) मिश्रित 'हे' (Mixed Hay)– जब फलीदार और बिना फलीदार फसलों को मिलाकर 'हे' बनाई जाती हैं तो उसे मिश्रित 'हे' कहते हैं। मिश्रित 'हे' फलीरहित 'हे' से उत्तम होती है। इसकी उत्तमता फलीदार फसल की मात्रा पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए – सोयाबीन और सूडान घास, जई और मटर इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के भी मिश्रण लेकर 'हे' बनायी जाती है। इन 'हे' को बनाने के लिए फसल को जल्दी काट लेना चाहिए ताकि प्रोटीन की मात्रा अधिक मिल सके।

(4) अनाज वाली फसल की 'हे' (Grain Hay) – अनाज वाली फसलों से भी 'हे' तैयार की जा सकती है। उदाहरणार्थ – जौं, जई, बाजरा, गेहूँ आदि इन फसलों से उत्तम जाति की 'हे' प्राप्त करने के लिए इन्हें दानों में दूध पड़ने (Milking stage) में काट लेना चाहिए। ये अच्छी गुण वाली होती हैं।

उत्तम 'हे' के गुण (Qualities of Good Hay)

1. इनमें पत्तियाँ अधिक होनी चाहिए क्योंकि पत्तियों वाले भाग में ही पाच्य तत्वों की मात्रा, लवण और विटामिन्स मिलते हैं। (It should be Leafy)।
2. इनका रंग हरा होना चाहिए (It should be green in colors)।
3. ये मुलायम और स्वादिष्ट होनी चाहिए (It should be succulent and palatable)।
4. ये फफूँदी अथवा सड़नरहित हों (It should be free from

moulds)।

5. इनमें खरपवार नहीं होना चाहिए (It should be free from weeds)।

6. धूल अथवा मिट्टी रहित हो (It should be free from dust and soil)।

'हे' बनाना तथा सुखाना (Method of Curing Hay)

(अ) खेत में 'हे' बनना (Curing of Hay in field)

(1) समतल भूमि पर तैयार करना – 'हे' बनाने के लिए फसल को जब इस पर फूल आ रहा हो सुबह के समय ओस हट जाने के बाद काटकर खेत में फैला देना चाहिए। फसल को 9"–12" मोटी तह के रूप में सम्पूर्ण खेत में फैलाते हैं। समय–समय पर इसे पटकते रहना चाहिए। जब जल की मात्रा लगभग 14 प्रतिशत हो तो इसे ऐसे स्थान पर इकट्ठा करना चाहिए जहाँ वर्षा का बचाव हो।

(2) शोष पंक्तियों को तैयार करना (Windrows method) फसल को खेत में एक दिन तक समतल पड़ी रहने के बाद से पूरे क्षेत्र में छोटी–छोटी ढेरियों के रूप में इकट्ठा करते है समय–समय पर उलटते रहना चाहिए।

(3) तिपाई विधि (Tripod method)–तराई वाले क्षेत्रों में जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ फसल को तिपाये गाढ़कर उन पर फैला देते हैं। इस प्रकार ये हवा और धूप से सूख जाती हैं।

(ब) शस्यागार शोषण विधि (Barn drying method)

– मौसम की प्रतिकूलता होने के परिणामस्वरूप जहाँ 'हे' खेतों में नहीं तैयार की जा सकती वहाँ 'हे' निर्माण कार्य के लिए शस्यागार शोषण विधि अपनायी जाती है। यह शोषण की कृत्रिम विधि है जिसमें यांत्रिक सहायता लेनी पड़ती है। शस्यागार के फर्श में नालियाँ बनी होती है जिनके द्वारा गर्म वायु का अन्दर प्रवेश कराया जाता है। यह बिजली द्वारा अथवा तेलीय ईंधन से चालू किया जा सकता है। पहले फसल को थोड़े समय तक खेत में ही सुखाया जाता है ताकि जल की मात्रा 25 प्रतिशत शस्यागार में आते समय हो क्योंकि इस विधि में अधिक खर्च होगा। इस विधि से तैयार की गई 'हे' में विटामिन ए. की मात्रा अधिक रहती है। परन्तु किण्वीकरण द्वारा पोषक तत्वों की हानि अधिक हो जाती है।

चित्र 17.3.1 'हे' बनाने की विधि

भारत में 'हे' बनाने में बाधाएँ (Limitations in Hay Making in India)

1. यहाँ का औसतन कृषक निर्धन है। वह अपना धन अधिक समय तक नहीं लगा सकता है।
2. भूमि की कमी होने के कारण पशुओं के चारे बहुत कम क्षेत्र में उगाये जाते हैं। अधिकतर अनाज की फसलें बोई जाती हैं।
3. घासें अधिकतर वर्षा ऋतु में तैयार होती हैं जबकि 'हे' बनाना इस मौसम में कठिन है।
4. सिंचाई साधन अपर्याप्त हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. पशु का आहार, पशु की उम्र व आवश्यकता के अनुसार होना चाहिए।
2. आहार में आवश्यक पदार्थ जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा खनिज लवण, विटामिन व पानी होते हैं।
3. दानों का दलिया बनाकर खिलाना ठीक रहता है।
4. आहार सुपाच्य होना चाहिए। अतः हरा चारा पशु को अवश्य देना चाहिए।
5. दूध निकालते समय धूलमय चारे नहीं खिलाने चाहिए।
6. पशुओं की उनकी उम्र के अनुसार आहार देना चाहिए।
7. गर्भवती गाय को अलग से दाना देने से गर्भ का समुचित विकास होता है।
8. दुधारू पशु को चारे के साथ दाना (बांटा) देकर दूध की मात्रा बढ़ायी जा सकती है।
9. दूध देने वाले पशुओं को पर्याप्त हरा चारा खिलावें।
10. दाने का 1 प्रतिशत खनिज लवण पशुओं को दें।
11. प्रत्येक पशु के आहार में खनिज मिश्रण अवश्य मिलायें।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. साइलेज के लिए उपयुक्त फसल है।
   (अ) मटर (ब) ज्वार
   (स) लोबिया (द) बरसीम
2. साइलेज बनाने के लिए ज्वार फसल काटने की अवस्था होती है।
   (अ) फूल आने पर (ब) दाना बन जाने पर
   (स) फसल पक जाने पर (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. मीठी साइलेज में किस अम्ल की मात्रा अधिक होती है?
   (अ) लैक्टिक अम्ल (ब) एसिटिक अम्ल
   (स) एस्कॉर्बिक अम्ल (द) टारटरिक अम्ल
4. बिनौले में टाक्सीन होता है।
   (अ) गॉसीपाल. (ब) हाइड्रोसायनीक अम्ल
   (स) लेथीरोजन (द) हेमोग्लूटीनीन

5. हरे चारे में होती है।
   (अ) सुपाच्यता (ब) विरेचकता
   (स) स्वादिष्टता (द) सभी
6. दूध देने वाली गाय को खनिज की आवश्यकता होती है।
   (अ) लौह तत्व (ब) कॉपर तत्व
   (स) कैल्सियम (द) गंधक
7. गायों को प्रति 3 किग्रा दूध पर दाना दिया जाता है।
   (अ) 1 किग्रा. (ब) 2 किग्रा.
   (स) 3 किग्रा (द) 4 किग्रा.

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

8. 'हे' बनाने के लिए फली रहित घासों के नाम लिखिए।
9. साइलेज बनाने के लिए ज्वार की फसल काटने की अवस्था लिखिए।
10. पशु को 24 घंटे में जो कुछ खिलाया जाता है उसे क्या कहते है?
11. आहार के मुख्य अवयव कौन–कौन से हैं?
12. गर्भवती गाय को कितना दाना देना चाहिए।
13. साइलेज में शुष्क पदार्थ कितने प्रतिशत होता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

14. मिश्रित 'हे' का महत्त्व लिखिए।
15. 'हे' बनाने के लिए फली एवं फली रहित घासों के नाम लिखिए।
16. सन्तुलित आहार की परिभाषा लिखो।
17. जीवन निर्वाह आहार क्या होता है?
18. बैलों से मध्यम कार्य लेने हेतु कितना दाना देना उपयुक्त रहता है?
19. गाय के जीवन निर्वाह हेतु कितना दाना देना उपयुक्त रहता है।

निबन्धात्मक प्रश्न–

20. साइलेज किसे कहते हैं? इसके लाभ, हानि एवं इसके लिए उपयुक्त फसल का वर्णन कीजिए।
21. 'हे' बनाने के लिए कौन–कौन सी फसलें प्रयोग की जा सकती हैं? उत्तम 'हे' के गुणों का वर्णन कीजिए।
22. आहार के मुख्य कार्य बताइए।
23. दुधारू गाय के आहार का वर्णन करो।
24. दानों के विभिन्न मिश्रण तालिका दर्शायें।
25. खनिज मिश्रण के महत्व व पूर्ति हेतु क्या करना चाहिए?

उत्तरमाला–

1. (ब) 2. (अ) 3. (अ) 4. (अ) 5. (द)
6. (स) 7. (अ)

अध्याय 18
पशु स्वास्थ्य (Animal Health)

18.1 स्वस्थ एवं रोगी पशु की पहचान (Indentification of Healthy and Diseased Animal)

(i) स्वस्थ एवं रोगी पशु के लक्षण :– विभिन्न रोगों के कारण प्रतिवर्ष हजारों पशु मर जाते हैं। जो पशु बीमार होने के बाद ठीक हो जोते हैं, उनकी शारीरिक वृद्धि कम हो जाती है। बीमार दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है।

स्वस्थ – पशु की वह अवस्था है जिसमें पशु के शरीर के सभी तंत्र एवं अंग उसकी आयु, लिंग, कार्य एवं उत्पादन के अनुसार सुचारू रूप से कार्य करते हो एवं पशु के शरीर का तापमान, सांस की गति, नाड़ी की गति साधारण हो। दूसरे शब्दों में स्वस्थ बीमारी से मुक्ति है।

बीमारी – स्वस्थ दशा से विचलित होने की अवस्था को बीमारी या रोग कहते हैं।

स्वस्थ पशुओ के लक्षण :– पशु द्वारा प्रदर्शित किये गये बाह्य लक्षणों के अनुसार यह पता लगा सकते हैं कि पशु स्वस्थ है या बीमार। इसके लिए यह आवश्यक है कि एक पशुपालक या फार्म प्रबन्धक को प्रतिदिन अपने पशुओं को निकट से निरीक्षण कराना चाहिए जिससे शीघ्र उपचार कर सके। इसके लिए यह जरूरी है कि उसे एक स्वस्थ या बीमार पशु के लक्षणों की जानकारी हो। स्वस्थ एवं रोगी पशुओं के लक्षण तालिका में निम्नांकित हैं–

यह आवश्यक नहीं है कि तालिका 18.1.1 में वर्णित लक्षण सभी रोगों में प्रकट हो क्योंकि अलग–अलग बीमारियों के विशेष लक्षण होते हैं। जिनसे उन्हें पहचानकर रोग का निदान किया जा सकता है। अतः एक पशुपालक पशुओं के सभी क्रियाकलापों से परिचित हो। उसे स्वस्थ एवं रोगी पशुओं के लक्षणों की जानकारी होनी चाहिए। जिससे रोग ग्रसित पशु का शीघ्र से शीघ्र उपचार कराया जा सके एवं आर्थिक हानि से बचा जा सके। यदि उपचार में विलम्ब किया गया तो अधिक हानि होगी।

(ii) पशुओं का शारीरिक ताप :– साधारणतया पशुओं के शरीर का तापमान डॉक्टरी थर्मामीटर को पशुओं के मलाशय (रैक्टम) में रखकर लिया जाता है। लेकिन जब ऐसा करना किसी कारण से असम्भव हो तो योनि (वेजाइना) में थर्मामीटर डालकर तापमान मालूम किया जाता है। तापमान नापने से पहले थर्मामीटर के पारे को अच्छी तरह उतार लेना चाहिए। पारे को साधारणतया हाथ से झटका देकर उतारा जाता है, मगर इस प्रकार पारा शीघ्र न उतरे तो थर्मामीटर के बल्ब को ठण्डे पानी में 2–3 मिनट डालकर फिर झटका देने से पारा उतर जाता है। झटका देते समय बल्ब हाथ में नहीं पकड़ना चाहिए वरन् उसका उल्टा सिरा पकड़ना चाहिए। थर्मामीटर को मलाशय में अंदर डालने के पहले बल्ब वाले सिरे को ग्लिसरीन या वैसलीन की सहायता से चिकना कर लेना चाहिए जिससे वह आसानी से अंदर प्रवेश कर सके। सीधे डालने के बजाय अगर थोड़ा घुमा–घुमा कर डाला जाए तो थर्मामीटर अधिक सुविधा से अंदर प्रवेश कर जाता है। यदि रैक्टम में कड़ा गोबर हो तो उँगली के सहारे से थर्मामीटर को रैक्टम की श्लेष्मिक झिल्ली से लगा देना चाहिए। भेड़ व बकरी में तापमान लेते समय थर्मामीटर को तिरछा कर दिया जाता है, जिससे वह श्लेष्मिक झिल्ली से लग जाए। सही तापमान के लिए यह आवश्यक है कि थर्मामीटर रैक्टम की श्लेष्मिक झिल्ली से सम्पर्क में रहे। केवल थर्मामीटर का बल्ब ही अंदर नहीं डालना चाहिए बल्कि उसका लगभग आधा भाग अंदर डालना चाहिए। यदि तापमान मींगणी करने या गोबर करने के तुरंत बाद लिया गया है अथवा निर्धारित समय से कम समय तक अंदर रखा गया हो तो थर्मामीटर के तापमान का पठन वास्तविक शारीरिक तापमान से कम होगा। यदि थर्मामीटर के पठन में कुछ संदेह हो तो तापमान दोबारा लेना चाहिए। थर्मामीटर एक मिनट या डेढ़ मिनट तक अंदर रखना चाहिए। दो–चार मील चलकर आये हुए पशु का तापमान कम से कम आधा घण्टा आराम

तालिका 18.1.1 स्वस्थ एवं रोगी पशुओं के लक्षण

क्र.सं.	स्वस्थ पशुओं के लक्षण	रोगी पशुओं के लक्षण
1.	स्वस्थ पशु रेवड़ में रहता है।	बीमार पशु रेवड़ से अलग हो जाता है एवं मुरझाई सी अवस्था में रहता है।
2.	पशु ध्वनि और गति के प्रति उचित संवेदन शीलता दर्शाता है।	बाह्य संवेदक के प्रति पूरी तरह संवेदनशील नहीं रहता।
3.	पशु की त्वचामुलायम, चमकदार, लचीली एवं Pliable होती है। इसकी पहचान गर्दन की चमड़ी को पकड़कर की जा सकती है।	पशु की त्वचा सूखी, मोटी, कम लचीली, चमकहीन व रोंगटे खड़े रहते हैं, त्वचा को हाथ से पकड़ने पर रोए हाथ पर चिपक जाते हैं।
4.	पशु के नथुने नम होते हैं नासारन्ध्र से किसी प्रकार का स्राव नहीं निकलता है।	नथुने शुष्क होते हैं। नासारन्ध्र से पानी जैसा गाढ़ा या खून निकल सकता है।
5.	आंखे चमकदार एवं सचेत होती हैं।	आंखों में कम चमक होती है एवं कुछ बीमारियों में पानी या तरल गाढ़ा पदार्थ निकलता है।
6.	आहार पुरी तरह से खाता है।	आहार खाने में कोई रूचि नहीं लेता।
7.	पशु जुगाली करता रहता है।	जुगाली नहीं करता या कम करता है या लार गिरती है।
8.	पशु ठीक तरह से गोबर करता है गाय भैंस का गोबर अपेक्षकृत ढीला होता है एवं रंग गहरे हरे से गहरा भूरा होता है। गोबर में किसी प्रकार का बुलबुला या खून नहीं होता एवं किसी प्रकार की दुर्गंध नहीं आती।	पशु के गोबर के रंग, मात्रा, गाढ़ापन व गन्ध में परिवर्तन आ जाता है। गोबर सूखा या पतला करता है या कब्जी हो जाती है।
9.	पशु के पेशाब का रंग हल्का पीला या पानी जैसा होता है। सामान्य रूप से पेशाब करता है एवं किसी प्रकार की दुर्गंध नहीं आती।	पेशाब का रंग गहरे पीले रंग का या लाल रंग जैसा होता है। पेशाब में दुर्गंध आती है। पेशाब करने में तकलीफ, पेशाब की ज्यादा या कम मात्रा।
10.	दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन सामान्य रहता है एवं दुग्ध की गुणवत्ता सामान्य रहती है।	दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है। दुग्ध की गुणवत्ता में गिरावट आती है। दुग्ध पानी जैसा या मवाद या खून आता है।
11.	श्वसन क्रिया एवं श्वसन गति सामान्य होती है।	श्वास लेने में कठिनाई, खांसी या दुर्गंध युक्त श्वास आती है।
12.	शरीर का तापमान सामान्य रहता है।	तापमान सामान्य से अधिक या कम हो सकता है।
13.	नाड़ी की गति सामान्य होती है।	नाड़ी की गति सामान्य से अधिक या कम हो जाती है।
14.	पशु के उठने–बैठने, चलने व चरने की क्रिया सामान्य होती है।	उठने–बैठने में तकलीफ होती है। पशु लंगड़ाता है।
15.	पशु की आवाज सामान्य रहती है।	आवाज में परिवर्तन आ जाता है।
16.	पशु कान, पूंछ तथा सिर हिलाते रहते हैं एवं सिर ऊँचा उठाये रखते हैं।	कान, पूँछ तथा सिर कम हिलाते हैं या बिल्कुल नहीं हिलाते। सिर नीचे की ओर होता है।
17.	प्राकृतिक द्वार (Natural orifies) जैसे जननेन्द्रियों से किसी प्रकार का स्राव नहीं आता। परन्तु मादा पशु के पाले (Heat) में आने पर स्राव आता है।	जननेन्द्रियों में मवाद जैसा स्राव या खून आता है।
18.	पशु के स्वभाव में सामान्य से भिन्नता नहीं होती।	पशु का स्वभाव सामान्य नहीं रहता।

देकर लेना चाहिए वरना उस पशु का शारीरिक तापमान बढ़ा हुआ मिलेगा।

सांसर्गिक व संक्रामक रोगों में शरीर का तापमान बढ़ जाता है। गर्भावस्था एवं तरूण अवस्था में शरीर का तापमान सामान्य से एक डिग्री फॉरेनहाइट ऊपर चला जाता है। कमजोर व थके हुए पशुओं का तापमान सामान्य से कम होता है। विभिन्न पशुओं का सामान्य औसत तापमान का रेंज औसत वातावरणीय तापमान पर निम्नांकित है।

तालिका 18.1.2
पशुओं का शारीरिक तापमान

पशु की जाति	औसत तापमान	क्रिटिकल तापमान
घोड़ा	38.0°C (100.5°F)	39.0°C (102.0°F)
गाय व भैंस	38.5°C (101.5°F)	39.5°C (103.5°F)
सूअर	39.5°C (103°F)	40.0°C (104°F)
भेड़	39.0°C (102°F)	40.0°C (104.0°F)

उपरोक्त तालिका में विश्राम की दशा में विभिन्न पशुओं का तापमान और क्रिटिकल पॉइंट यानि जिसके ऊपर तापमान बढ़ा हुआ माना जाता है। दिखाया गया है। शरीर के तापमान में सामान्य रूप से थोड़ा बहुत परिवर्तन होता है, परन्तु इसे बीमारी का लक्षण नहीं मानना चाहिए। वातावरण में अत्यधिक आर्द्रता और वातावरण के तापमान तथा कठोर शारीरिक परिश्रम के कारण शरीर का तापमान बढ़ जाता है। अत्यधिक वातावरणीय तापमान के कारण शारीरिक तापमान में 3° F की बढ़ोतरी हो जाती है। रेस के घोड़े का उसके 2 घंटे तक विश्राम देने के बाद तापमान लिया जाता है। अगर कोई पशु ठण्डे वातावरण से लाया जाकर अंदर किसी गर्म वातावरण में रखा जाये तो उसके शरीर का तापमान 2–4 घंटे में क्रिटिकल तापमान से ऊपर चला जायेगा।

नाड़ी (Pulse)–

गाय और भैंस में नाड़ी दर पूँछ के अधर भाग पर धड़क रही मध्य काक्सीजियल धमनी से ज्ञात की जाती है। इसके लिए पूँछ को पृष्ठ भाग हाथ से पकड़ना चाहिए ताकि उँगलियाँ अधर तल में धमनियों को स्पर्श करती हुई लगी रहे। घोड़े में नाड़ी दर चेहरे पर स्थित फेसियल धमनी से ज्ञात की जाती है। भेड़ व बकरी में टांग के ठीक बीच में अंदर की तरफ स्थित फेमोरल धमनी से नाड़ी दर मालूम किया जाता है। सूअर की नाड़ी दर को आसानी से ज्ञात नहीं किया जा सकता है। नाड़ी दर मालूम करते समय नाड़ी सपिंडनीयता (रिद्म) अवधि, संख्या, गुण व नियमितता देखनी चाहिए। केवल अनुभव से ही व्यक्ति नाड़ी दर को पूर्ण व्याख्या कर सकता है। नाड़ी दर हृदय गति की दर को परिलक्षित करती है तथा नहीं भी करती है। विश्राम की अवस्था में विभिन्न पशुओं में पाई गई नाड़ी निम्न प्रकार है :–

तालिका 18.1.3
पशुओं की नाड़ी गति

क्रमांक	पशु की प्रजाति	नाड़ी गति प्रतिमिनट
1.	गौ वंशीय पशु	40–50
2.	महिष (भैंस)वंशीय पशु	40–45
3.	भेड़	70–80
4.	बकरी	70–80
5.	ऊँट	28–32
6.	घोड़ा	32–40
7.	सूअर	60–80
8.	कुक्कुट	200–400

श्वसन (Respiration)–

श्वसन वक्र के तीन भाग होते हैं और इन तीन भागों की अवधि बराबर होती है। ये तीन भाग हैं :–

1. उच्छवास, 2. निष्वास तथा 3. विश्राम। इनमें से किसी भी एक भाग की अवधि में अगर परिवर्तन हो जाता है तो सभी भागों की सपिंडनीयता (रिद्म) में असमानता आ जाती है। उच्छवास के समय में बढ़ोत्तरी फेफड़े के ठीक से न सिकुड़ने का लक्षण है। लगभग सभी फेफड़ों की बीमारियों में श्वसन चक्र से विश्राम का भाग अनुपस्थित रहता है, जिसमें श्वसन दर बढ़ जाती है, अत्यधिक परिश्रम, दौड़ इत्यादि में भी श्वसन दर बढ़ जाती है।

श्वसन को नापने के लिए हथेली को नाक के सामने रखकर श्वसन दर मापी जाती है। दर मापने के लिए उच्छवासों को गिना जाता है।

श्वसन नापने की दूसरी विधि यह है कि श्वसन दर पशु की कोख को उठने और गिरने को गिन कर बताई जाती है। इसमें भी कोख (Flank) का उठना गिनते हैं या गिरना गिनते हैं।

तालिका 18.1.4

क्रमांक	पशुओं की जाति	श्वसन गति प्रतिमिनट
1.	गौ वंशीय पशु	20–25
2.	महिष (भैंस) वंशीय पशु	16–18
3.	भेड़	12–20
4.	बकरी	12–20
5.	ऊँट	05–07 (दोपहर में तेज)
6.	घोड़ा	08–16
7.	सूअर	08–18
8.	कुक्कुट	15–30

18.2 सामान्य व्याधियों की पहचान एवं उपचार

(i) बीमारियों का वर्गीकरण

पशुओं में जो विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ होती हैं उनमें से कुछ बीमारियों को पशु के खानपान एवं अन्य बातों पर नियन्त्रण करके रोका जा सकता है या ठीक किया जा सकता है। जैसे – बदहजमी, जुकाम इत्यादि। लेकिन कुछ रोग ऐसे होते हैं जो पशुओं में अचानक होते हैं और इनका प्रकोप भी अधिक भयानक होता है, जैसे– ऐन्थ्रेक्स, गलघोटू, चेचक इत्यादि।

पशुओं में होने वाली बीमारियों को निम्न आधार पर वर्गीकृत किया गया है :–

(अ) रोग के कारक के आधार पर।
(ब) रोग से पीड़ित अंगों के आधार पर।
(स) रोग प्रकोप एवं अवधि के आधार पर।
(द) रोग विभाजन के आधार पर।
(य) रोग आरम्भ होने के आधार पर।

(अ) रोग के कारक के आधार पर – इस वर्ग में वे सभी रोग आते हैं, जिनका कारक निश्चित होता है। इनको तीन भागों में बाँटा गया है।

(1) संसर्ग रोग (Contagious Disease) – इन्हें छूत की बीमारी भी कहते है। इस वर्ग में वे सभी रोग आते हैं, जो रोग ग्रस्त पशु के स्वस्थ पशु के सम्पर्क में आने से स्वस्थ पशुओं में भी फैल जाता है। जैसे–पशु प्लेग, गलघोटू इत्यादि। छूत से फैलने वाले (संसर्ग रोग) सभी रोग संक्रामक होते हैं, लेकिन सभी संक्रामक रोग छूत से फैलने वाले नहीं होते हैं।

(2) संक्रामक रोग (Infectious Disease) – इस वर्ग के रोग जीवाणु (Bacteria), वायरस (Virus), परजीवी (Parasites) तथा प्रोटोजोआ (Protozoa) द्वारा फैलते हैं। यह रोग, रोगग्रस्त पशुओं के सम्पर्क में रहने वाली वस्तुओं के द्वारा भी स्वस्थ पशुओं में पहुँच जाते हैं।

(3) अन्य रोग (Others) – अन्य रोगों में पोषक तत्वों की कमी से (जैसे–कैल्सियम की कमी से अस्थि वक्रता) होने वाले रोग, चयापचय जन्य रोग (जैसे– कीटोसिस तथा दुग्ध ज्वर) एलर्जिक रोग (जैसे चर्मरोग) तथा विषाक्तता (सायनाइड विषाक्तता) आदि रोग आते हैं।

(ब) रोग से पीड़ित अंगों के आधार पर – इस वर्ग के रोगों को दो वर्गों में बाँटा गया है :–

(1) स्थानीय रोग (Local Desease) – वे रोग जो एक समय में पशु के एक खास भाग को ही प्रभावित करते हैं। जैसे– होर्निया, थनैला, फोड़ा इत्यादि।

(2) साधारण रोग (General Disease) – इस वर्ग के रोग पशु शरीर के विभिन्न भागों तथ कभी–कभी पूर्ण शरीर को ही प्रभावित करते हैं। जैसे–इन्फ्लूएंजा बुखार।

(स) रोग प्रकोप एवं अवधि के आधार पर – इस वर्ग के रोगों को चार भागों में बाँटा गया है :–

(1) अति उग्र रोग (Per Acute Disease) : ऐसे रोग जो पशुओं पर अचानक आक्रमण करते हैं इनके लक्षण भी भली प्रकार प्रकट नहीं हो पाते और पशु यकायक मरने लगते हैं। जैसे भेड़ों में ऐन्थ्रेक्स रोग।

(2) उग्र रोग (Acute Disease) : ऐसे रोग जो अचानक अधिक तेजी से आते हैं और थोड़ी देर में समाप्त हो जाते हैं। जैसे गलघोटू, लंगड़ी रोग।

(3) उप उग्ररोग (Sub Acute Disease) : इनमें वे सभी रोग आते हैं जो अचनानक तेजी से आते हैं और इनकी अवधि अधिक लम्बी होती है। जैसे खुरपका रोग।

(4) चिरकालीन रोग (Chronic Disease) : इनमें वे रोग आते हैं जो पशु शरीर में धीरे–धीरे दिखाई देते हैं तथा अधिक समय में समाप्त होते हैं। जैसे क्षय रोग इत्यादि।

(द) रोग विभाजन के आधार पर – इस वर्ग के रोगों को 6 भागों में बाँटा गया है :–

(1) पशु महामारी (Epizootic) : इस प्रकार के रोग एक साथ बड़े क्षेत्र में पशुओं में फैलते हैं और इनके लक्षण भी सभी पशुओं में एक समान ही होते हैं।

(2) स्थानिक मारी रोग (Enzootic) : इस प्रकार के रोग वे माने जाते हैं जो पशुओं की कुछ विशेष नस्लों अथवा

जातियों को ही प्रभावित करते हैं।

(3) विदेशज रोग (Exotic) : ऐसे रोग जो विदेशी नस्ल खरीदते समय इनके साथ देश में आ जाते है। जैसे दक्षिण अफ्रीकी अश्व रोग।

(4) विकीर्ण रोग (Sporadic) : यह रोग यंत्र–तांत्रिक रोग भी कहलाता है। यह रोग कभी–कभी पशुओं में दिखाई देता है, जैसे–पागलपन (Rabies)।

(5) पैन्जूटिक रोग (Penzootic) : इस प्रकार के रोग प्रायः वह होते हैं, जो एक साथ किसी राष्ट्र में पशुओं की विभिन्न जातियों को प्रभावित करते हैं।

(6) देशी रोग (Indigenous) : इस प्रकार के रोग एक राष्ट्र के जन्मजात रोग होते हैं, ये आरम्भ से ही पशुओं में होते हैं।

(य) रोग आरम्भ होने के आधार पर : इस वर्ग को तीन भागों में बाँटा गया है।

(1) पैतृक रोग (Hereditary) : वे रोग जो जो माता–पिता से संतान में आते हैं, जैसे मिर्गी तथा हिमोफीलिया।

(2) जन्मजात रोग (Congenital) : वे रोग जो बच्चों में गर्भकाल से ही माँ से लग जाते हैं। जैसे क्षय रोग।

(3) अर्जित रोग (Acquired) : वह रोग जो बच्चों में जन्म लेने के बाद उनके जीवनकाल में वातावरण से लग जाते हैं।

(ii) सामान्य व्याधियाँ

पशुओं में कई प्रकार की व्याधियाँ होती हैं। कुछ ऐसी व्याधियाँ हैं जैसे – घाव, मोच, दाह, कब्ज, आफरा, अतिसार, खुजली एवं भोजन विषाक्तता आदि जिसका पशुपालक स्वयं इनके लक्षणों को पहचानकर प्राथमिक उपचार कर सकता है।

1. घाव (Wound)

घाव को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:–

i) खरोंच (Abration) :– यह किसी वस्तु से रगड़ खाने, टकराने, कटीली झाड़ियों से तारबंदी से रगड़ खाने से या गिरने से होते हैं। इसमें त्वचा की सूक्ष्म रक्तवाहिनियाँ फट जाती हैं। खरोंच घाव बहुत ही दर्द युक्त होता है एवं कई बार ऊत्तकों के बीच द्रव्य इकट्ठा हो जाता है जिसमें घाव में सूजन पैदा हो जाती है।

उपचार (Treatment) :– यदि घाव मामूली सी खरोंच की स्थिति में हो तो 0.1% लाल दवा (पोटैशियम परमैंग्नेट) से बने पानी के घोल से यो 1% फिनायल युक्त पानी में रुई भिगोकर घाव को धोवें उसके बाद टिंचर आयोडिन को रुई में भिगोकर घाव पर लगावें।

ii) खुले घाव (Open wound) :– शरीर के किसी भाग पर चोट लगने से ऊत्तक नष्ट हो जाने एवं रक्त वाहिनियों के फट जाने से होता है। इस प्रकार के घाव दुर्घटना से, तेज धारदार या नुकीले औजार से, किसी पदार्थ से टकराने से हो जाता है। ताजे घाव से खून निकलता है यदि इस प्रकार के घाव की ठीक तरह से देखभाल न की जाए तो घाव सड़ जाता है। घाव पर मक्खियाँ बैठने पर उसमें कीड़े (maggot) भी पड़ जाते हैं। अतः ताजे घाव का शीघ्र उपचार करने पर जल्द भर जाता है।

उपचार (Treatment) :– सर्वप्रथम घाव के आस–पास के बाल काट दें। लाल दवा एक प्रतिशत के घोल से धोकर साफ कर लेना चाहिए। यदि घाव से खून निकल रहा हो तो टिंक्चर बेन्जाइन का रुई का फाहा रखकर पट्टी बांध देनी चाहिए। यदि घाव ऐसे स्थान पर हो जहाँ पट्टी बाँधना सम्भव न हो तो वहाँ कोई एन्टीसैप्टिक मल्हम घाव के ऊपर लगा देना चाहिए।

iii) पुराना घाव (Old wound) :–यदि ताजे घाव का समय पर उपचार नहीं किया जाये तो घाव सड़ने लगता है। इस प्रकार का घाव पुराना घाव कहलाता है। इस प्रकार के घाव में मवाद (Pus) पड़ जाती है एवं घाव से दुर्गंध आती है। मक्खियों के बैठने से घाव में कीड़े पड़ जाते हैं।

उपचार (Treatment) :– इस प्रकार के घाव को लाल दवा के एक प्रतिशत घोल से अच्छी तरह से साफ करना चाहिए। रूई के फोहे से अच्छी तरह से साफ करना चाहिए। रूई के फोहे से घाव में पड़ी मवाद, मृत ऊत्तक आदि को घाव से निकाल दें। यदि घाव में कीड़े पड़ गए हों तो तारपिन तेल का रूई का फाहा 5–10 मिनट तक लगाकर रखें जिससे घाव के भीतर घुसे कीड़े घाव की सतह पर आ जायें उसके बाद रूई की फाहा हटाकर बाहर निकाल देवें। घाव पर एन्टिसैप्टिक मल्हम या टिंक्चर आयोडीन लगावें। जब तक घाव पूरी तरह न भरे नियमित रूप ये घाव पर दवा लगाएं एवं पट्टी बाँधें जिससे घाव को धूल एवं मक्खियों से बचाया जा सके।

शरीर के कई ऐसे नाजुक भाग हैं जैसे आंख, कान, थन, योनि, गुदा द्वार आदि के घावों का उपचार ऊपर वर्णित उपचार विधि से करने पर लाभ की जगह नुकसान

होगा। नाजुक भागों के घावों के उपचार हेतु एक्रीफ्लेवीन लोशन, मरक्यूरोक्रोम आदि दवा लगानी चाहिए।

2. दाह (Burn)

पशु आवास में आग लग जाने से गर्म पानी से या रासायनिक घोल (तेजाब) से जल जाता है। जिससे फफोले पड़ जाते हैं एवं फफोलों के फूटने पर उसमें से द्रव्य निकलता है एवं घाव हो जाता है।

उपचार (Treatment) :– जले हुए भाग पर चूने का पानी, अलसी का तेल (यदि अलसी का तेल उपलबध नहीं हो तो मीठा तेल) बराबर मात्रा में मिलाकर लगाने से काफी आराम मिलता है। यदि घाव में मवाद या तरल सा पदार्थ निकलता हो तो लाल दवा के हल्के गर्म घोल से साफ करके जिंक ऑक्साइड दिन में दो–तीन बार लगाना चाहिए। सिरका, शहद या पैराफीन लगाने से भी दर्द कम होता है। तेजाब से जल जाने पर एक प्रतिशत कपड़े धोने का सोडे का घोल लगाएं। यदि पशु के शरीर का काफी भाग जल गया हो तो तुरंत पशु चिकित्सक से इलाज कराएं।

3. मोच (Sprain)

यह आमतौर पर पशु के फिसलने से, कूदने से, पशु के आपस में लड़ने पर चोट लगने से मोच आती है। मोच साधारणतया शरीर के जोड़ों पर विशेषकर टांग में आती है। इसमें मांसपेशियाँ, स्नायु (Ligaments) या टेन्डन (Tandens) पर चोट आती है या ये अपने स्थान पर से हट जाते हैं। मोच के स्थान पर सूजन आती है जो गर्म एवं दर्द युक्त होती है। यदि मोच पशु के टागों में है तो पशु लंगड़ाकर चलता है।

उपचार (Treatment) :– यदि मोच ताजी एवं गर्म है तो उस जगह पर ठंडा पानी डालें या बर्फ से सेक करें। पुरानी मोच में नमक या बोरिक एसिड मिले गुनगुने पानी से सेक करें। पशु को सूजन एवं दर्द कम करने वाली (Anti inflamatory and Analgesic) दवा लगाएं।

4. पेचिस (Dysentery)

पर्यायवाची (Synonyms)

खूनी दस्त, खूनीपेचिस, लाल पेचिस

यह रोग एक प्रजीवा (Protozoa) द्वारा फैलने वाली रोग है, जो कि गर्मी के दिनों में अधिकतर फैलता है। इस रोग का जीवाणु बड़ी आँत में रहता है और पशु में दस्त उत्पन्न करता है। रोगी पशु के दस्त में अण्डे की तरह की छोटी–छोटी कोकसीडिया (Coccidia) निकलती हैं, जोकि बिना सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखी जा सकती हे। यह रोग पशुओं तथा कुक्कुट में छोटे बच्चों में ज्यादा सघन जनसंख्या हो फैलता है। बड़े पशुओं में इसका आक्रमण नहीं होता हैं यह बीमारी गाय, भैंस तथा कुक्कुट के छोटे बच्चों में फैलती है।

बीमारी का कारण (Etiology)

यह प्राजीव परजीवी– *कोकसीडियम जरनाई* या *इमेरिया जरनाई* (Protozoan parasite- *coccidium zerni* or *Emeria zerni*) के द्वारा फैलता है। यह परजीवी गोबर में पाया जाता है, जो कि बड़ी आँत पर आक्रमण करता है। इन जीवाणुओं की स्पोरोजोइट (Sporozoite) अवस्था छूत फैलाने का कार्य करती है।

लक्षण (Symptoms)

बीमारी की प्रारम्भिक अवस्था में बहुत पतला गोबर होता है, जिसमें रक्त मिला होता है। एक दो दिन बाद और अधिक खून आने लगता है। बहुत जोर लगाने पर ऐंठन के साथ दस्त होता है। कभी–कभी जोर लगाने से रैक्टम भी बाहर आ जाता है। पशु में बेचैनी एवं प्यास बढ़ जाती है, भूख कम हो जाती है परन्तु इसमें तापक्रम नहीं बढ़ता है। इसमें रोगी 5–15 % मर जाते हैं।

निदान (Diagnosis)

(1) लक्षणानुसार : बीमारी के उपरोक्त लक्षण देखकर निदान (Diagnosis) की जा सकती है।

(2) सूक्ष्मदर्शी द्वारा (Microscopic) : गोबर का स्मीयर बनाकर परीक्षण करने पर जीवाणु देखे जा सकते हैं।

(3) पोस्टमार्टम : मरे हुए शव की चीर फाड़ करने से आँतें सूजी हुई कई गुना मोटी दिखाई देती हैं। आँतों की श्लेष्म झिल्लियों पर रक्त के धब्बे मिलते हैं। गुदा की श्लेष्म झिल्ली (Mucous membrane) पीली पड़ जाती है।

चिकित्सा (Treatment)

(1) सौंफ, जीरा, बेलगिरी सबकी एक–एक तोला मात्रा लेकर चावल के एक किलो मांड में देनी चाहिए।

(2) क्लोरोडीन 5 ग्राम, फिनोल 750 मिलीग्राम, दलिया 400 ग्राम सबको मिलाकर दिन में 2–3 बार देना चाहिए।

(3) सल्फा ड्रग्स जैसे सल्फागोनेडीन, सल्फामैजेथीन की गोलियाँ या सल्फामैजाथीन सोडियम 33.3% के घोल की इन्ट्रावेनस सुई लगाने से लाभ होता है।

(4) ऐंठन तथा दर्द को कम करने के लिए गुदा में 1% फिटकरी का घोल पिचकारी द्वारा चढ़ाना चाहिए।

(5) दस्तों के कारण पशु के शरीर से काफी पानी निकल जाता है, अतः पशु का डीहाइड्रेशन रोकने के लिए 1000–2000 सैलाइन घोल जिसमें ग्लूकोज हो इन्ट्रावेनस सुई देनी चाहिए।

(6) नक्सवोम 30 – गोबर कम उसके साथ आंव अधिक होने पर दें।

(7) एलोज 30 – पेट में गड़गड़ाहट, आधो–वायु के साथ मल त्याग उसमें आँव तथा खून का परिमाण अधिक होनेपर दें।

(8) मर्क्यूरिसकार 200 – काले, मटमैले, आँवयुक्त कोलतार जैसे दस्त हों तो इस औषधि को दें।

(9) मर्क सोल 200 – खून का भाग कम हो, पेट में मरोड़ अधिक हो तब इस दवाई का प्रयोग करें।

रोकथाम (Prevention and Control)

पशु गृह तथा अन्य जगह से कोकसीडिया नष्ट करने के लिए अमोनिया घोल का छिड़काव करना चाहिए। इसके अतिरिक्त वे सब उपचार जोकि संक्रामक रोगों के बचाव के लिए बताए गए हैं, अपनाने चाहिए।

5. आफरा (Tympanites)

पर्यायवाची (Synonyms)

आफरा, पेट फूलना, अफरा (Bloat, Tympany)

पेट की बीमारियों में यह रोग अधिकतर होता है। गीला हरा चारा, सड़ी गली चीजें खाने से पशु के पेट में गैस भर जाती है, जिससे कि पशु का पेटफूल जाता है और बांई कोख पर अंगुली मारने पर ढोल की सी आवाज होती है। यह रोग पशु को एक दम या धीरे–धीरे भी होता है। पेट में गैस भरने के कारण फेफड़ों पर भारीदबाव पड़ता है, जिससे कि सांस लेने में इतनी कठिनाई होती है कभी–कभी तो पशु मर भी जाता है।

कारण (Causes)

पशुओं को सड़ी–गली चीजें, बदबूदार पानी देने, वर्षा में नए उगे हुए जहरीले चारों का खाना, गर्मी एवं वर्षा में ज्यादा देर तक भीगे दाने खाना, पाचन क्रिया का खराब होना, खाने की नली में रोक होना, पशु को चारा एवं पानी पिलाकर काम लेना या भगाना और एक ही करवट से काफी देर तकलेटे रहना आदि–आदि इस बीमारी के कारण हैं।

लक्षण (Symptoms)

रोग का मुख्य लक्षण पशु की पेट में गैस का भरना है। जिसके कारण बांयी कोख अधिक दांयी कम फूलती है। कोख को यदि दबाया जावे तो वह दबती और पीटने पर ढोल की तरह आवाज करती है। पशु बहुत ही बैचेन हो जाता है। जल्दी–जल्दी उठता–बैठता है। उसके मुँह से लार गिरती है, जीभ बाहर निकल आती है। सांस लेने में बहुत कठिनाई होती है। मुँह को आगे को करके सांस लेता है। बाद में सांस मुँह से लेने लगता है। गोबर एवं पेशाब बन्द हो जाता है। अन्त में पशु जमीन पर बैठकर लम्बी सांस लेता है और पशु मर जाता है।

निदान (Diagnosis)

(1) उपरोक्त लक्षण को देखकर रोग की पहचान आसानी से की जा सकती है।

चिकित्सा (Treatment)

(1) पशु को तुरन्त, हींग 11.5 ग्राम, तारपीन का तेल 58 ग्राम, मीठा या अलसी का तेल 650 ग्राम।

इन सबको मिलाकर पिलाओ और पशुओ को टहलाओं। दोनों कोखों पर दोनों तरफ आगे पीछे एवं नीचे की तरफ मालिश करें।

(2) काला नमक 23 ग्राम, अजवायन 23 ग्राम, मदार के पत्ते 58 ग्राम। सबको पीसकर पानी के साथ दो।

(3) उसके बाद एक जुलाब दो जिसमें, नमक 200 ग्राम, एलवा 18 ग्राम, सौंठ 23 ग्रम, शीरा 220 ग्राम। इन सबको एक किलो पानी में दें।

(4) इसके बाद, चिरायता 11.5 ग्राम, काला नमक 23 ग्राम, नौसादर 11.5 ग्राम, सौंठ 11.5 ग्राम। इन सबको आधा किलो पानी में दें।

(5) जब किसी भी तरह लाभ नजर न आवे तो अन्त में बांयी कोख के बीचों बीच ट्रोकार कैनुला घुसा कर कैनुला की मदद से गैस निकालनी चाहिए।

(6) किण्वीकरण रोकने के लिए तारपीन का तेल कैनुला के छिद्र से ही रियुमन में डाल देना चाहिए। ऐसा करने से गैस बनना बन्द हो जाती है।

(7) **लाइकोपोडियम 200** – पशु के दांयी तरफ के आफरे की यह उत्तम दवा है, इसमें पेट में बहुत वायु बनती है, खाने के थोड़ी देर बाद पेट फूलने लगता है।

(8) **चाइना 200** – यदि पूरे पेट में आफरा है, पशु कमजोर है तो इसका प्रयोग करें।

(9) **नक्सवोम 30** – पशु बार–बार गोबर करने का प्रयास करता हो तो इसका प्रयोग करें।

6. कब्ज (Constipation)

यह भी पशुओं का आम रोग है। इसमें पशु का चारा ठीक प्रकार से नहीं पचता है व उसे कब्ज हो जाता है। पशु को गोबर नहीं आता और जो आता है वह सख्त बहुत होता है।

कारण (Causes)

सूखा भूसा या चारा देकर काफी देर तक पानी न पिलाना, पहले (रूमेन) एवं तीसरे पेट (ओमेजम) में चारे का फंस जाना और काम न लिया जाना आदि, कारणों से यह रोग हो जाता है।

लक्षण (Symptoms)

पशु को बहुत सख्त गोबर होना, गोबर थोड़ा–थोड़ा एवं आँव लिपटा होना, भूख का कम होना, पेशाब का ज्यादा होना, मुंह में काटों का बढ़ना और पशु का सुस्त रहना आदि रोग के लक्षण हैं।

निदान (Diagnosis)

लक्षणों को देखकर रोग की पहचान हो जाती है।

चिकित्सा (Treatment)

अलसी, अरण्डी और तिल का तेल बराबर–बराबर मात्रा में मिलाकर 600 ग्राम की मात्रा तैयार करके उसमें 80/80 ग्राम सौंठ मिलाकर पशु को एक खुराक में दें।

अथवा

खाने का नमक 150 ग्राम, नौसादर 20 ग्राम, सौंठ 40 ग्राम, शीरा 150 ग्राम, गंधक 20 ग्राम, ऐल्वा 23 ग्राम, गर्म पानी 1 किलो में सबको मिलाकर पिलाओं। इसके बाद अगले दिन से काला नमक 23 ग्राम, सौंफ 23 ग्राम, अजवायन 11.5 ग्राम, चिरायता 11.5 ग्राम, कुचला 100 मिलीग्राम, पान 320 ग्राम, सबको मिलाकर सुबह पिलाओ। खाने में भीगी हुई चोकर हरी–हरी घास और दूध पिलाओ।

लक्षणों के अनुसार नक्सवोम 30, प्लमबम 200, एल्यूमीना एवं पल्स आदि औषधियों का प्रयोग करें।

7. अतिसार (Diarrhoea)

पर्यायवाची (Synonyms)

अतिसार, दस्त, पेट चलना,

इस बीमारी में पशु पानी की तरह पतला गोबर करता है। दस्त लगने के कारण पशु कमजोर हो जाता है। यदि चिकित्सा सही समय पर न की जाये तो मर भी सकता है।

कारण (Causes)

खराब चारे, दाने एवं पानी का देना, आँतों में खरास का होना, सूखे चारे के बाद कच्चे हरे चारों का देना, पेट में कीड़ों का होना, ज्यादा गर्मी एवं सर्दी का लगना आदि। इसके अतिरिक्त अन्य संक्रामक रोगों के जीवाणुओं के प्रकोप के कारण भी यह रोग उत्पन्न हो सकता है।

लक्षण (Symptoms)

पशु सुस्त हो जाता है, जुगाली कम या बिल्कुल बन्द कर देता है। खाना पीना बन्द कर देता है। गोबर बहुत पतला आता है, जिससे कि पिछले पैर गोबर में सने रहते हैं। प्यास बहुत बढ़ जाती है। पशु बहुत ही कमजोर होने लगता है। त्वचा सूखी प्रतीत होती है। बाँधने के स्थान पर गोबर के छींटे दूर–दूर तक पड़े मिलते हैं।

निदान (Diagnosis)

उपरोक्त लक्षणों को देखकर ही रोग का निदान किया जा सकता है।

चिकित्सा (Treatment)

पहले बीमारी के कारण को जानकर दूर करो। यदि रोग किसी संक्रामक बीमारी के कारण हो तो पहले उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। यदि रोग खराब चारे या आंतों में खरास होने के कारण हो तो पशु को अलसी या तिल या अरण्डी का तेल 160–220 ग्राम और उसमें 300 मिलीग्राम अफीम मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे आँतों की खरास खत्म हो जावेगी। पानी के बजाय चावलों के माँड में नमक मिलाकर पिलाओ।

(1) इसके बाद अगले दिन दस्त रोकने के लिए खड़िया मिट्टी 58 ग्राम, कत्था23 ग्राम, अंफीम 300 मिलीग्राम, सौंठ 15 ग्राम, चावल का माँड 750 ग्राम में सबको मिलाकर दिन में दो बार पिलाओ।

(2) पकी प्याज 40 ग्राम, कत्था 23 ग्राम, अफीम 300 मिलीग्राम, चावल का माँड 500 ग्राम।

(3) जामन का अर्क 80 ग्राम, सौंफ 15 ग्राम, गोंद बबूल 80/80 ग्राम, अफीम 300 मिलीग्राम, चावल का माँड 320 ग्राम।

(4) आम की गुठली 40 ग्राम, सौंफ 20 ग्राम, दाल चीनी 11.50 ग्राम, बेल गिरी 40 ग्राम, चावल का माँड 320 ग्राम।

(5) अजवायन 23 ग्राम, कत्था 23 ग्राम, सौंफ 35 ग्राम, मांड 320 ग्राम।

अगर इनसे भी आराम न हो तो पशु को अल्फागोनाडीन या सल्फामैजाथीन की गोली दी जा सकती है।

(6) **पोडाफाइलम 200**– पशु पतले दस्त बिना जोर लगाए करता हो।

(7) **सल्फर**– केवल दिन के समय छेरा लगता हो।

(8) **नक्स 30**– यदि बार–बार छेरा लगता हो।

8. खुजली (Mange)

यह बीमारी एक छूतदार है जो कि एक पशु से दूसरे पशु में शीघ्रतापूर्वक पहुँचती है। यह रोग खुजली के कीटाणु (Mange Mites) द्वारा फैलता है। यह रोग सभी पशुओं तथा मनुष्यों में फैलता है। इस रोग के परजीवी (Parasite) त्वचा में 1/8''–1/2'' के फांसले पर छेद बना देते हैं और इनमें अण्डे दे देते हैं। रोग उत्पन्न होने पर इन स्थानों पर फुंसी बन जाती है। इसके बाद इन भागों में तेज खुजली होती है। खुजाने पर इनमें मवाद पड़ जाती है।

कारण (Causes)

यह चार प्रकार के कीटाणुओं द्वारा फैलता है, जो निम्न है:–

(1) Psoroptie communis
(2) Chorioptes symbiotes
(3) Demodex folliculorum.
(4) Sarcoptes scabie.

इनमें सबसे अन्तिम *(Sarcoptes scabie)* कम बीमारी फैलती है, परन्तु फैलने पर सबसे भयंकर होती है, क्योंकि इस बीमारी के कीटाणु त्वचा में घुस जाते हैं, अतः इन बाहरी दवाओं का प्रभाव नहीं होता है।

लक्षण (Symptoms)

सभी पशुओं में इस बीमारी के लक्षण एक ही समान होते हैं। यह बीमारी चेहरे, होंठ और पैरों से आरम्भ होती है और सिर गर्दन और टांट (Hump) तक पहुँच जाती है। पूँछ की जड़ पर भी यह रोग खूब होता है। इस बीमारी में पशु को खाज बहुत जोर से होती है। खुरों से सिर को खुजलाता है। आस–पास के पेड़ या दीवार से गर्दन को या दूसरे रोग ग्रस्त भाग को जोर से रगड़ता है। रोग ग्रस्त भाग के बाल गिर जाते हैं, त्वचा सूज कर मोटी होने लगती है। खुजली दिन की अपेक्षा रात को ज्यादा होती है। खुजली के अधिक होने पर उस स्थान पर खुरंड बन जाती है और फिर खुजाने पर उस स्थान से पीप सा निकलने लगता है। गीली खुजली में छाले पड़–पड़ कर फूट जाते हैं और पशु को बहुत दर्द होता है।

निदान (Diagnosis)

(1) उपरोक्त लक्षणों को देखकर रोग का निदान किया जा सकता है।

(2) सूक्ष्मदर्शी द्वारा– सूक्ष्मदर्शी द्वारा इसके बैक्टीरिया देखे जा सकते हैं।

कारण (Causes)

खुजली वाले भाग को गर्म पानी एवं साबुन से धोकर 400 ग्राम पानी में 5 ग्राम दारचिकना मिलाकर लगाना चाहिए। जब घाव सूख जाये तो गन्धक 40 ग्राम, जवाखार 23 ग्राम, शीशम की लकड़ी का तेल 23 ग्राम, बकरे की चर्बी या कड़वा तेल या नीम का तेल 250 ग्राम में मिलाकर तीसरे दिन लगाओ।

मिट्टी का तेल 1 भाग, 5 भाग दूध में मिलाकर लगाने से भी लाभ होता है।

खाने में गन्धक 11.50 ग्राम, भुना हुआ सुहागा 11.50 ग्राम मिलाकर देना चाहिए या मैगसल्फ तथा गन्धक मिलाकर खिलाने चाहिए।

इसके अतिरिक्त लगाने वाली दवायें :–

गन्धक 28 ग्राम, तारपीन का तेल 28 ग्राम, पोटाशवाईकार्व 7 ग्राम सरसों का तेल 220 ग्राम। सबको मिलाकर खुजली वाले भाग पर लगाओ।

ऐसकेवयोल इमलशन का प्रयोग भी कर सकते हैं।

सल्फर 200 – यदि अधिक खुजली लगती हो, छाले के बाहर लाल रिंग हो तो इसका प्रयोग करें।

सीपिया 200 – यदि पूरे छाले पीलापन लिये हों, बहुत खुजली लगती हो और पशु बार–बार पूँछ चलाता हो तो इसका सेवन करायें।

रसटक्स 200 – यदि जले हुए के समान बड़े–बड़े छाले हों और बहुत खुजली लगती हो तो इसका प्रयोग करें।

9. भोजन विषाक्तता

प्रायः सभी पशु आहारों में लाभदायक तत्व पाये जाते हैं, लेकिन इन पशु आहारों में कुछ हानिकारक पदार्थ भी पाये जाते हैं। जिससे पशु आहार विषैला हो जाता है। जिनके प्रमुख उदाहरण यहाँ दिये गये हैं:–

1. सायनोजेनेटिक ग्लूकोसाइड (Cyanogenetic Glucosides) : ये कुछ ऐसे पदार्थ हैं। जैसे – ज्वार में धुरीन (Dhurrin) जिनका कुछ इन्जाइम द्वारा हाइड्रोलायसिस होने पर हाइड्रोसायनिक अम्ल बनता है। यह हाइड्रोसायनिक अम्ल सूक्ष्म मात्रा में ही बहुत हानिकारक होता है। अगर हरी ज्वार में धुरीन हो तो आहार में ज्वार की मात्रा 3 % से अधिक नहीं होनी चाहिए।

2. गोसीपोल (Gossipol) : यह बिनौले (Cotton Seed) या बिनौले की खल में पाया जाता है। यह ऐरोमेटिक एल्डीहाइड होता है। मुर्गियों के आहार में 0.015 प्रतिशत मात्रा भी हानिकारक होती है। बिनौले को उबालने पर इसका जहरीला प्रभाव कम हो जाता है।

3. अफ्लाटोक्सिन (Aflatoxin) : कुछ पशु आहार जैसे मूँगफली की खल (Groundnut Cake) आदि में *Aspergillus flavis* जैसी फफूँदी (Moulds) के लगने से सड़ने लगती है, जिससे कुछ टोक्सिन (Toxin) जैसे अफ्लाटोक्सिन बन जाते हैं। जो पशुओं के लिए विषैले सिद्ध होते हैं।

4. कीटनाशी (Insectisides) : विभिन्न फसलों पर कीट नियंत्रण हेतु कई कीटनाशी (जैसे–मिथाइल पैराथियान, इण्डोसल्फान) छिड़के जाते हैं। जिनका प्रभाव फसल की कटाई के बाद भी बना रहता है। जब पशु इस चारे को खाते हैं तो ये कीटनाशी उन्हें हानिकारक सिद्ध होते हैं।

18.3 परजीवी – जूं एवं किलनी (Parasite- Lice & Tick) –

परजीवी विज्ञान जीव विज्ञान की एक मुख्य शाखा है जिसके अन्तर्गत ऐसे जन्तुओं का अध्ययन किया जाता है जो अपने से बड़े आकार के तथा भिन्न समुदाय के जन्तुओं एवं पशुओं पर चयापचयी रूप से आश्रित रहते हैं तथा उनके शरीर के अन्दर विभिन्न भागों एवं तन्तुओं में या शरीर के ऊपर त्वचा पर अपने जीवन की पूर्ण या अपूर्ण अवधि तक रहकर निर्वाह करते हैं तथा विकसित होते हैं। व्यापक तौर पर परजीवी शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत जन्तु ही नहीं वरन कुछ वनस्पति जीव भी आते हैं। साधारणतया प्रकृति में विभिन्न प्रकार के जन्तु या तो पृथ्वी पर या पानी में या हवा में या मिश्रित रूप से इन वातावरण में रहते हैं। इसके विपरीत कुछ जन्तु अन्य जन्तुओं पर आश्रित जीवन व्यतीत करते हैं जिन्हें 'परजीवी' (Parasite) कहते हैं। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के जन्तु एक–दूसरे के साथ, परजीवी न होते हुए भी, भिन्न–भिन्न प्रकार के सहचर्य में देख सकते हैं।

फीताकृमि (Tape worm) –

ये पर्णकृमि के समान चपटे होते हैं। परन्तु खण्डीय व फीते के समान विभिन्न लम्बाई के होते हैं। इनकी जनन क्रिया उभयलिंगी (Hermaphrodite) है तथा नर व मादा के जनन अंग प्रत्येक खंड में होते हैं। प्रत्येक फीता कृमि के आरम्भ में एक सिर होता है जिसे स्कोलेक्स (Scolex) कहते हैं। यह अंग लगभग गोल होता है। साधारणतया इस पर चार चूशण (Suckers) होते हैं या इनका कई प्रकार का रूपान्तर होता है। (कुछ फीताकृमि के चूशण पर कांटे लगे रहते हैं (Armed suckers) स्कोलेक्स का आगे का कुछ भाग निकला रहता है जिसे रोस्टलेम (Rostellum) कहते हैं।) स्कोलेक्स के पीछे एक छोटा सा अखंडीय भाग होता है जिसे गर्दन (Neck) कहते हैं जिसके पीछे खंड आरम्भ हो जाते हैं जो पहले अपरिपक्व अवस्था में फिर परिपक्व अवस्था में होते हैं। पीछे के कुछ खंडों में पाचन क्रिया के बाद बने अण्डे होते हैं। ये खण्ड टूट–टूट कर मल के साथ बाहर आ जाते हैं। अण्डों को संक्रामक अवस्था में पहुँचाने के लिए साधारणतया मध्यस्थ पोषक की आवश्यकता पड़ती है। अतः विभिन्न वंशों के फीताकृमियों की लारवा अवस्था स्पष्ट रूप से भिन्न होती है जो अनेक प्रकार के मध्यस्थ पोषक में पनपती है।

उपचार –

कृमि नाशक औषधियों का प्रयोग करें।

अलवैण्डाजोल संस्पैशन भैंस, बैल व घोड़े के लिए 20 मि. ली. प्रति 100 किलो शरीर भार तथा भेड़, बकरी के लिए 5 मि.ली., प्रति 25 किलो शरीर भार पर इसके अलावा सैस्टोफीन, आदि भी दे सकते हैं।

ऐस्केरिस (Ascaris) –

भारतवर्ष में यह प्रमुख रूप से पाया जाता है। इस परजीवी का प्रकोप गर्मियों में 3 महीने तक के बछड़ों में अधिक पाया जाता है। भैंस के बछड़े गाय के बछड़ों की तुलना में अधिक सुग्राही होते हैं।

जीवनचक्र की मुख्य अवस्थाएँ एवं संक्रमण –

गोलकृमि पशुओं की आँत में रहते हैं। इनके अण्डे मल के साथ शरीर के बाहर आते हैं। ये अण्डे यथोचित समय में संक्रामक अवस्था में पहुंच जाते हैं तथा इनके अन्दर लार्वा की द्वितीय अवस्था बन जाती है। पशु द्वारा खा लेने पर ये छोटी आँत में निर्मोकोत्सर्जन (Moulting) करते हैं। यहाँ से ये शरीर के विभिन्न अंगों के ऊत्तकों में (जैसे–यकृत, फुफ्फुस, वृक्क) में पहुंच जाते हैं।इस समय तक इनमें कोई विकास नहीं होता। जिसे प्रसवपूर्व संक्रमण (Prenatal Infection) कहते हैं।

रोगजनकता –

यह मुख्य रूप से तीन महीने की उम्र तक के बछड़ों का परजीवी है। भारी संक्रमण से बछड़ों में अतिसार हो जाता है और शरीर कृशकाय हो जाता है जिसके कारण उन्हें खड़े रहने में भी परेशानी होती है। उसकी श्वांस से सड़े मक्खन जैसी गंध आती है। बछड़ों में न्यूमोनिया के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। गोलकृमियों की वयस्क अवस्था आँत्रशोध पैदा करती है। भारी संख्या में यह आँत में अवरोध पैदा करते हैं।

लक्षण –

पशुओं में खाने के प्रति अरूचि हो जाती है, शरीर के भार में कमी आ जाती है तथा अतिसार हो जाता है। शरीर में रक्त की कमी हो जाती है तथा छोटी व बड़ी आँत में आंत्रशोध हो जाता है। भेड़ों में पैरों के चारों ओर की त्वचा गल जाती है जिसे पद गलन (Foot rot) कहते हैं। जिससे इन स्थानों पर जीवाणु प्रवेश कर जाते हैं।

उपचार –

कृमि नाशक औषधियों का प्रयोग करें जैसे कैरीसाइड, 55–100 मिली ग्राम/किलो शरीर भार के अनुसार इसके अतिरिक्त डेवर्म, पेनाकर, आदि भी दे सकते हैं।

(1) किलनी प्रकोप (Tick infestation)

किलनी बाह्य परजीवी होती है जो पशु के शरीर पर पाई जाती है। यह दो प्रकार की होती है कठोर किलनी व कोमल किलनी। कठोर किलनियों के शरीर पर कवच पाया जाता है जिसका कोमल किलनियों के शरीर पर अभाव होता है।

रोगजनकता तथा पशुओं पर कुप्रभाव :

किलनियाँ संपूर्ण विश्व में पालतू पशुओं पर पाई जाती हैं। संभवतः ही कोई पशु होगा जो इनके कुप्रभाव से बचा होगा। यह अपने परपोशी को अनेक प्रकार से हानि पहुँचाती हैं जिनमें बड़ी मात्रा में रक्त चूसना, दंश द्वारा बेचैनी, अगघात तथा अनेक प्रकार के प्रोटोजोआ, जीवणु, रिकेटसिया तथा विषाणु रोगों को संचारित करना शामिल है।

बड़ी संख्या में पशु का रक्त चूसने से और उनमें बैचेनी पैदा करने से उनमें रक्त की कमी होती है। छोटी आयु के पशुओं का समुचित विकास नहीं होता तथा कार्यशील पशु की क्षमता कम हो जाती है या दूधारू पशुओं में दूध उत्पादन गिर जाता है। कभी–कभी किलनियों के अत्यधिक संक्रमण से छोटी आयु के पशुओं की मृत्यु हो जाती है। परपोशी का रक्त चूसने से त्वचा में सूजन आ जाती है और वहाँ वर्ण बन जाते हैं जिनमें जीवाणु तथा ब्लो–मक्खियाँ आक्रमण करके अनेक रोग उत्पन्न करती हैं।

किलनियों द्वारा संचरित होने वाले प्रमुख रोगों में स्पाटिड ज्वर, क्यू ज्वर (Q-fever) तथा हृदय गल रोग, प्रोटोजोआ जनित रोग जैसे बबेसिओसिस, थिलेरिओसिस व एनाप्लाज्मोसिस मुख्य हैं।

किलनी नियंत्रण –

किलनियों का नियंत्रण उनके जीवनकाल में बाधा उत्पन्न करके किया जाता है। नियंत्रण हेतु निम्न उपाय किये जाते हैं :–

1. कीटनाशी औषधि का प्रयोग कर :

पशु शरीर पर किलनियों को नष्ट करने का यह सबसे अच्छा उपाय है। इसमें विभिन्न किलनी नाशी (Acaricide) औषधियों की उपयुक्त प्रतिशत सांद्रता पशु स्नान, फुहार, धोवन, धूलि तथा धूमकायन (Fogging) के रूप में प्रयोग की जाती है।

विभिन्न कीटनाशी का विवरण आगे तालिका में दिया गया है।

तालिका 18.3.1
किलनी नियंत्रण के कीटनाशी

कीटनाशी की प्रतिशत सांद्रता

क्र.सं.	कीटनाशी का नाम	प्रति 5–7 दिन पर उपचार हेतु	प्रति 2–5 दिन पर उपचार हेतु	एक बार में उपचार हेतु
1.	आर्सेनिक सल्फाइड	0.16	0.175–0.20	–
2.	ब्यूटॉक्स (डेल्टामेथ्रिन)	0.2–0.25	0.2–0.3	0.3
3.	निकोटीन	0.1	0.15	–
4.	सायथियान	0.05	0.1	–
5.	मैलाथियान	0.5–1.0	–	–

2. जिन स्थानों पर किलनियों का प्रकोप अधिक हो वहाँ के आस–पास की वनस्पति, घास आदि को जला देना चाहिए
3. चारागाहों में पशुओं को घूर्णन चराई (Rotational grazing) करानी चाहिए।
4. पशुशाला में विभिन्न कीटनाशी दवाओं का छिड़काव समय–समय पर सावधानी के साथ करते रहना चाहिए।
5. देसी मुर्गिया पालें – ये मुर्गियां इन्हें खाकर सफाया कर देती है।

(2). जूँ प्रकोप (Lice-infestation or Lousiness)

जूँ पशुओं के शरीर पर पाए जाते हैं तथा उनका रक्त व लसिका द्रव्य चूसकर हानि पहुँचाते हैं। पालतु पशुओं में जूँ की निम्न जातियाँ पायी जाती हैं :–

1. हिमेटोपाइनस यूरीस्टर्नस :– इसे साधारणतः 'शार्ट नोज्ड केटिल लाउस' कहते हैं। यह जाति गौवंश पर पाई जाने वाली जुँओं में सबसे बड़ी जूं है तथा पशुओं की गर्दन, सिर व पूँछ पर मुख्यतः पाई जाती है। इसके अण्डे खाल व बालों पर चिपके रहते हैं। शीतकाल के अन्तिम माह फरवरी व मार्च में इनका प्रकोप सबसे अधिक होता है। यह जाति पशु का रक्त चूसती है तथा पशु में रक्तहीनता पैदा करती है।

2. हिमेटोपाइनस ब्रूफेलाई :– भारतवर्ष में भैंसों पर पाई जाती है।

3. लीनोग्नेथस ओवीलस :– यह जाति भेड़ों पर पाई

जाती है। इसे साधारणतः भेड़ की शरीर जूं या नीली जूं या फेस लाउस कहते हैं। इनका शरीर नीले रंग का होता है।

4. लीनोग्नेथस पीडेलिस :– यह भी भेड़ की जूं है जो टांगों व पैरों पर पाई जाती है। इसलिए इसे 'पाद जूं' कहते हैं।

5. लीनोग्नेथस स्टेनोप्सिस :– भारतवर्ष में बकरियों के शरीर पर पाई जाती है।

6. माइक्रोथोरेसिअस कमेली :– यह ऊँट पर पाई जाती है।

पशु पर कुप्रभाव :

जूं पशु का रक्त चूसती है तथा पशु में उत्तेजना पैदा करती है। निरन्तर उत्तेजना से पशु अपने शरीर को काटता है, खरोंचता है, व्याकुल रहता है तथा आराम नहीं कर पाता। जिससे वह भोजन नहीं कर पाता। जूं काटने के स्थान पर जो रक्त बाहर आकर जम जाता है इस पर मक्खियाँ आकर्षित होती हैं जिससे 'स्ट्राईक' रोग उत्पन्न होता है। पशु कमजोर हो जाता है तथा रक्त की कमी हो जाती है और उसका उत्पादन घट जाता है।

उपचार –

जूं नष्ट करने के लिए विभिन्न कीटनाशक दवायें निमज्जन (dips) छिड़काव (spray) नहलान (wash), बुकनी (dust) के रूप में प्रयोग की जाती है। गोपशुओं में 0.5 से 1.0 प्रतिशत मैलाथियान बुकनी के रूप में या 0.2 प्रतिशत ब्यूटॉक्स निमज्जन या छिड़काव के रूप में प्रयोग की जाती है। एक भाग फीनोथइजीन, दो भाग सोडियम फ्लोरोसिलीकेट तथा चार भाग आटे को मिलाकर बुकनी के रूप में 10 से 14 दिन के अन्तर में पशु के शरीर पर दो बार लगाने से नष्ट हो जाती है। सेविन (0.1 से 0.2 प्रतिशत) के प्रयोग से जूं पूरी तरह समाप्त हो जाती है।

भेड़ों में 0.2 प्रतिशत ब्यूटॉक्स या 0.1 प्रतिशत निकोटिन के निमज्जन के प्रयोग से जूं समाप्त हो जाती है।

रोकथाम –

पशुओं को जूं से ग्रस्त होने से बचाने में सबसे अधिक महत्व गौशाला का अच्छा प्रबन्ध, सफाई, पशुओं का अच्छा स्वास्थ्य व अच्छा आहार है। जूं परपोशी से अलग जीवित नहीं रह सकते अतः पशुओं को ऐसे स्थान या बाड़े से कम से कम 2 से 3 सप्ताह तक दूर रखना चाहिए जहाँ जूं से ग्रस्त पशु हों। ज्यादातर जूं शीतकाल में पाई जाती है। अतः उस समय पशु की सफाई रखी जानी चाहिए।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. स्वस्थ दशा से विचलित होने की अवस्था को बीमारी या रोग कहते हैं।
2. रोगी पशु की नाड़ी गति, श्वांस गति तथा शारीरिक तापमान में परिवर्तन हो जाता है।
3. पशु का शारीरिक तापक्रम ज्ञात करते समय थर्मामीटर के पारे वाला बल्ब मलाशय से श्लेष्मा झिल्ली के संपर्क में होना चाहिए।
4. गाय भैंसों की नाड़ी गति कॉक्सीजियल धमनी से घोड़े की फेसियल धमनी से तथा भेड़, बकरी की नाड़ी गति फेमोरल धमनी से ज्ञात करते हैं।
5. श्वासगति, नाड़ी गति ज्ञात करते समय पशु सामान्य अवस्था में हो वह उत्तेजित/भयभीत न हो।
6. पशुओं में होने वाली बीमारियों को वर्गीकृत करने के 5 आधार हैं।
    1) रोग के कारक
    2) पीड़ित अंग
    3) प्रकोप एवं अवधि
    4) रोग विभाजन तथा
    5) रोग आरम्भ होने के आधार पर
7. पेचिस छोटी उम्र के पशुओं और मुर्गियों में होने वाला रोग है।
8. आफरा रोग में पशु के पेट में गैस बनती है।
9. कब्ज में पशु का गोबर सख्त हो जाता है।
10. खुजली रोग के कीटाणु 1/8'' से 1/2'' की दूरी पर त्वचा में छेद बनाकर घुस जाते हैं।
11. गोसीपोल – बिनौले या बिनौले की खल में पाया जाने वाला जहरीला पदार्थ है।
12. फीताकृमि एवं एस्केरिस आन्तरिक परजीवी तथा जूँ एवं किलनी बाह्य परजीवी है।
13. आन्तरिक परजीवियों के ईलाज के लिए कृमिनाशी औषधियाँ दी जाती हैं।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. पशु की नाड़ी गति ज्ञात करने के लिए नाड़ी की धड़कने गिनने के लिए समय निर्धारित है।

(अ) 1 मिनट (ब) 2 मिनट
(स) 3 मिनट (द) 4 मिनट

2. गाय का शारीरिक तापक्रम है :
(अ) 100^{o} F (ब) 101.5^{o} F
(स) 103.5^{o} F (द) 107^{o} F

3. घावों के उपचार में काम में लिया जाता है।
(अ) एन्टीसेप्टिक (ब) एन्टीपायरेटिक
(स) एन्थेलमेन्टिक्स (द) एन्टीडायूरैटिक

4. पेचिस रोग का कारक है।
(अ) वैसीलस
(ब) किलनी
(स) *कॉक्सीडियम जरनाई*
(द) *सारकोप्टिस स्केविआई*

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

5. रोगी पशु किसे कहते हैं ?
6. अगर गाय को मलाशय में जख्म हो तो उसका शारीरिक तापक्रम कैसे ज्ञात करोगे ?
7. फीताकृमि एवं ऐस्केरिस परजीवी का नियन्त्रण लिखिए।
8. महामारी किसे कहते है?
9. मोच का इलाज बताइए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न :

10. पशु के अस्वस्थ होने पर उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
11. गाय की श्वसन गति कैसे ज्ञात करोगे विस्तृत रूप में बताइए।
12. संसर्ग एवं संक्रामक रोगों में अन्तर बताइए।
13. घाव कितने प्रकार के होते हैं?
14. भोजन विषाक्तता का वर्णन कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न :

15. जूँ एवं किलनी का पशुओं में होने वाले प्रकोप एवं नियन्त्रण का वर्णन कीजिए।
16. निम्न बीमारियों का कारण, लक्षण एवं उपचार लिखिए।
1) आफरा, 2) खुजली, 3) अतिसार, 4) कब्ज

उत्तरमाला :

1. (अ) 2. (ब) 3. (अ) 4. (स)

अध्याय–19
पशुओं के लिए सामान्य औषधियाँ एवं उपयोग
(General medicines for animals and their use)

पशुओं का पूरा ध्यान रखते हुये भी वे कभी–2 अस्वस्थ हो ही जाते हैं। साथ ही वे एक दूसरे को चोट पहुँचा कर घायल कर देते हैं। पशुओं के गम्भीर बीमारी से ग्रस्त हो जाने पर तो उन्हें चिकित्सक के पास ले जाना आवश्यक हो जाता है परन्तु कभी–2 पशुओं की व्याधि ज्यादा बड़ी नहीं होती है। ऐसी स्थिति में यदि पशुपालक को व्याधियों तथा औषधियों की थोड़ी सी जानकारी हो तो वह अपने पशुओं को फार्म पर ही स्वयं ही इलाज कर सकता है। ऐसा करके वह समय, श्रम एवं धन की बचत कर सकता है। अतः इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये पशु चिकित्सा विज्ञान में काम आने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दों तथा सामान्य औषधियों के रुप, गुण तथा उपयोग का विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

पशु चिकित्सा विज्ञान में प्रयोग किये जाने वाले कुछ पारिभाषिक शब्द

1. **प्रति जैविकी–(Antibiotics)** ऐसे रसायन जो फफूँदी (Moulds) अथवा जीवाणुओं (Bacteria) के द्वारा प्राप्त होते हैं तथा जो अन्य सूक्ष्म जीवों की वृद्धि को रोकते हैं और उन्हें नष्ट कर देते हैं, उन्हें प्रतिजैविकी कहते हैं जैसे– पैनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन, क्लोरोमाइसैटीन आदि।
2. **जीवाणु–रोधक या जीवाणु प्रतिरोधी (Antiseptic)–** वे औषधियाँ जो जीवाणुओं की वृद्धि को तो रोक देती हैं परन्तु उन्हें नष्ट नहीं करती हैं, जैसे– बोरिक एसिड, डिटॉल, आयोडीन, लाल दवा आदि।
3. **रोगाणुनाशक या जीवाणुनाशक–(Disinfectant)** ऐसी औषधियाँ रोगाणुओं को उनके बीजाणुओं सहित नष्ट कर देती हैं, रोगाणुनाशक या जीवाणुनाशक कहलाती हैं, जैसे– फिनायल, लायसोल, चूना, कार्बोलिक एसिड (फिनोल) आदि।
4. **विरेचक या रेचक–(Purgatives)** वे औषधियाँ अथवा पदार्थ जिन्हें खिलाये जाने पर दस्त आने लगते हैं, विरेचक या रेचक कहलाते हैं। इनको निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा जा सकता हैं–

(अ) हल्के रेचक–(Laxatives) ये वे रेचक हैं जिनको खाने से सामान्य दस्त आने लगते हैं। उदाहरण– ईसबगोल की भूसी, शीरा, हरा चारा, गन्धक आदि।

(ब) मृदु रेचक–(Simple Purgatives) ये वे विरेचक होते हैं जो बिना ऐंठन के खुलकर दस्त ला देते हैं। उदाहरण– मैग्नीशियम सल्फेट, अरण्डी का तेल, अलसी का तेल, सोडियम सल्फेट आदि।

(स) तीव्र रेचक–(Drastic Purgatives) इनके खिलाने पर ऐंठन युक्त दस्त बार–2 आते हैं। उदाहरण– क्रोटन का तेल, बेरियम क्लोराइड का इन्ट्रावीनस इन्जैक्शन आदि।

5. **उत्तेजक–(Stimulant)** ये वे औषधियाँ अथवा पदार्थ हैं जो शरीर में उत्तेजना का अनुभव कराते हैं, जैसे– एल्कोहल, कपूर, कैफीन आदि।
6. **स्तम्भक–(Astringent)** ये वे पदार्थ हैं जो रक्त वाहिनियों श्लेष्मिक झिल्ली व तन्तुओं में संकुचन पैदा करके बहने वाले रक्त या द्रव को बन्द कर देते हैं। उदाहरण– टिंचर आयोडीन व फिटकरी बाह्य स्तम्भक तथा खड़िया, कत्था, अफीम आदि पतले दस्त को रोकने के लिए आन्तरिक स्तम्भक के रुप में प्रयोग किये जाते हैं।
7. **मर्दन तेल–(Massaging Oil)** वे तेल जिनका प्रयोग मालिश करने के लिए किया जाता है जैसे सरसों का तेल, तारपीन का तेल, तिल का तेल आदि।
8. **ज्वर रोधी–(Antipyretics)** वे औषधियाँ जो ज्वर (बुखार) में ताप कम करने के लिए दी जाती हैं, जैसे– एस्प्रिन, कुनैन, सैलीसिलिक अम्ल आदि।
9. **कफोत्सक–(Expectorants)** कफोत्सारक वे पदार्थ कहलाते हैं जो फुफ्फुस नाल के उदासर्जन (Secretions) को बढ़ाते, पतला करते हैं तथा उसे बाहर निकालते हैं जैसे– अमोनिया, उड़नशील तेल आदि।
10. **कफरोधी–(Anti Expectorant)** वे औषधियाँ जो फुफ्फुस नाल के उदासर्जन को कम करती हैं जैसे– अफीम, बैलाडोना आदि।
11. **विषध्न–(Antidotes)** वे औषधियाँ जो विष के प्रभाव को कम करने के लिए दी जाती हैं। उदाहरण– साइनाइड विष के लिए लौह लवण आदि।
12. **निश्चेतक–(Anaesthetics)** ये शरीर को अचेतन कर देती हैं इन्हें संवेदनहारी भी कहते हैं। उदाहरण– क्लोरोफार्म, ईथर, नाइट्रस आक्साइड आदि।

13. **एन्टी जाइमोटिक्स–(Anti-zymotics)** ये पदार्थ किण्वन क्रिया (Farmentation) को रोकते हैं। ये पेट दर्द या आफरा में गैसों का बनना रोकने के लिए दी जाती हैं। उदाहरण– बोरिक एसिड, फार्मलीन आदि।

14. **गैस हर या वातसारी–(Carminatives)** ये आमाशय व आँतों में गैस का बनना कम करने व उसे बाहर निकालने का कार्य करती हैं। जैसे हींग, सौंफ, जीरा, मेथी, ईथर आदि।

15. **पीड़ाहारी–(Analgesics)** ये पदार्थ स्नायुओं (Nerves) की उद्दीप्यता (Irritability) कम करके दर्द को कम करती हैं इन्हें शूल शामक (Anodynes) भी कहते हैं, जैसे अमोनिया, कपूर आदि की लिनीमैंट, एस्प्रिन, भांग आदि।

16. **शामक–(Sedative)** यह एक सामान्य पद हैं। इसमें शूल शामक और निद्रावह दोनों औषधियाँ शामिल हैं। जो स्नायु संस्थान की अति उत्तेजना को शांत करती हैं।

17. **संवेदन मंदक या निद्रावह–(Narcotics)** इनसे गहरी नींद आती है इसके साथ–2 संवेद्यता(Sensibility) रक्त परिसंचरण व श्वास क्रिया में भारी उदासीनता आ जाती है। उदाहरण– क्लोरोफार्म, ईथर, भांग, क्लोरल हाइड्रेट आदि।

18. **परजीविघ्न–(Parasiticides)** वे औषधियाँ जो त्वचा के परजीवियों (Parasites) को नष्ट कर देती है। इन्हें Antiparasitics भी कहा जाता हैं। उदाहरण– कॉपर सल्फेट, फिनाइल, मिथाइल पैराथियान आदि।

19. **गन्धहारक या दुर्गन्धनाशी–(Deodorants)** वे पदार्थ जो अरुचिकर गन्ध को दूर कर देते हैं या ढक लेते हैं। उदाहरण– फिनाइल, ब्लीचिंग पाउडर, आदि।

20. **कृमिहर–(Anthelmintics)** वे औषधियाँ या पदार्थ जो शरीर में उपस्थित, परजीवियों से मुक्ति दिला देती हैं उन्हें कृमिहर कहते हैं। जैसे– कॉपर सल्फेट, निकोटिन सल्फेट, फैरस सल्फेट, फिनोविस, तारपीन का तेल आदि।

    इनमें से वे औषधियाँ जो आन्तरिक परजीवियों को नष्ट करती हैं कृमिनाशक कहलाती हैं। तथा जो औषधियाँ आन्तरिक परजीवियों या कृमियों को मारती नहीं हैं परन्तु शरीर से बाहर निकाल देती हैं, उन्हें कृमिहारक कहते हैं।

21. **वमनकारी–(Emetics)** वे औषधियाँ या पदार्थ जिनके खा लेने से वमन या उल्टियाँ होने लगती हैं। उदाहरण– नमक, नीला थोथा, फिटकरी, जिंक सल्फेट आदि।

22. **दाहक–(Caustics)** वे औषधियाँ या पदार्थ जो ऊतकों को जलाकर नष्ट कर देती हैं जैसे– कॉपर सल्फेट, लाल दवा, कॉस्टिक एल्कली, फिनोल, जिंक सल्फेट, जिंक क्लोराइड आदि।

निम्नलिखित सामान्य औषधियों के उपयोग मात्रा एवं देने की विधियाँ

(अ) रोगाणुनाशक औषधियाँ –

1. फिनाइल–(Phenyl)

पहचान– यह एक कत्थई रंग का विशेष गंधयुक्त तरल पदार्थ हेता हैं। इसे पानी में घोलने पर यह सफेद रंग का हो जाता हैं।
उपयोग– इसका उपयोग रोगाणुनाशक, गन्धहारक एवं पैरासिटीसाइड के रुप में किया जाता हैं।

प्रयोग विधि–

1. पशुशाला के फर्श, दीवारों, नालियों तथा अन्य गन्दे स्थानों को रोगाणुओं से मुक्त करने के लिए इसके 1 प्रतिशत घोल से धोना चाहिए।
2. इसके 1% घोल मुँहपका खुरपका रोग में पशुओं के खुरों को धोने के लिए प्रयोग किया जाता हैं।
3. परजीवियों जैसे– जुएं, किलनियों आदि को नष्ट करने के लिए फिनाइल के 1 से 2% घोल का प्रयोग किया जाता हैं।
4. पशुओं के शरीर के घावों तथा अन्य कटे हुये भागों को धोने के लिए इसके 1% घोल का प्रयोग करना चाहिए।

2. कार्बोलिक एसिड–(Carbolic Acid)

पहचान– यह सफेद, कणदार, मीठे स्वाद तथा तीखी गंध वाला पदार्थ है। यह पानी, एल्कोहल, ईथर एवं ग्लिसरीन में घुलनशील हैं। इसे फिनोल (Phenol) भी कहते हैं।
उपयोग– इसे जीवाणुरोधक, जीवाणुनाशक दाहक तथा पैरासिटीसाइड के रुप में प्रयोग किया जाता है। इसका आंतरिक प्रभाव शामक तथा एन्टीजाइमोटिक होता है।

प्रयोग विधि–

1. साँप या कुत्ते द्वारा काटे गये स्थान को जलाने के लिए इसे घाव पर शुद्ध रुप में लगाना चाहिए।
2. पशुशाला में सफाई के लिए इसका 5% घोल जीवाणुनाशक के रुप में प्रयोग किया जाता है।
3. इसके 1% घोल का प्रयोग घावों को धोने में किया जाता है।
4. पशु शरीर से परजीवियों यथा जूँ, पिस्सू, किलनियों आदि को मारने तथा खुजली रोग में इसका 2% घोल लाभदायक होता है।

3. पोटैशियम परमैंग्नेट या लाल दवा–(Potassium Parmagnate)

पहचान– यह गहरे बैंगनी रंग का कणदार, गन्धहीन पदार्थ है जिसका स्वाद मीठा एवं कसैला होता है। यह पानी में घोलने पर उसका रंग लाल कर देता है इसीलिए इसे लाल दवा भी कहा

जाता हैं।

उपयोग– लाल दवा का उपयोग जीवाणुरोधक, रोगाणुनाशक, गन्धहारक, विध्न दाहक (कॉस्टिक) तथा कृमिनाशक के रुप में किया जाता है।

प्रयोग विधि–

1. इसके 1% घोल का प्रयोग पशु चिकित्सा में काम आने वाले उपकरणों व यंत्रों तथा हाथों को जीवाणुरहित करने में किया जाता है।
2. पिसा हुआ पोटैशियम परमैंग्नेट छालों पर दाहक के रुप में प्रयोग किया जाता हैं।
3. साँप द्वारा काटे गये स्थान के पास में इसके 2% घोल का इंजेक्शन सर्वोत्तम विषध्न (Antidote) होता है। इसके अलावा काटे गये स्थान पर रवों को भर देना भी लाभदायक रहता हैं। क्योंकि यह साँप के जहर को ऑक्सीकृत कर देता हैं।
4. इसका 1% घोल घावों को धोने के लिए प्रयोग किया जाता है।
5. आन्तरिक परजीवियों को नष्ट करने के लिए इसका हल्का घोल पशुओं को पिलाया जाता है।

4. लाइसोल–(Lysol)

पहचान– यह भूरे रंग का द्रव होता है जो पानी में घुलने पर उसका रंग सफेद भूरा कर देता है। इसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है।

उपयोग– इसका उपयोग जीवाणुरोधक, रोगाणुनाशक, गन्धहारक तथा विषनाशक के रुप में किया जाता है।

प्रयोग विधि–

1. पशुशाला के फर्श, नालियों व दीवारों को रोगाणुओं से मुक्त करने के लिए इसका 1 से 2% घोल प्रयोग करना चाहिए।
2. पशुशाला, चिकित्सा के औजारों व उपकरणों को रोगाणु रहित करने के लिए लाइसोल का 1 से 2% घोल प्रयोग करते हैं।
3. पशुओं के घावों को धोने हेतु इसका 1% घोल प्रयोग में लाते हैं।
4. गर्भाशय को धोने (गर्भाशय डूश) के लिए इसका 1 से 2% घोल काम में लेते हैं।

(ब) विरेचक औषधियाँ–

1. मैगसल्फ या मैग्नीशियम सल्फेट–(Magsulf or Magnesium sulphate)

पहचान– यह ठोस कणदार, कड़वे या कसैले स्वाद वाला, सफेद तथा गन्धहीन पदार्थ है। यह पानी में घुलनशील है तथा जीभ पर रखते ही ठण्डा लगता है।

उपयोग– मैगसल्फ का उपयोग विरेचक तथा ज्वररोधी के रुप में करते हैं।

प्रयोग विधि–

1. गाय या भैंस के लिए इसकी 250 से 400 ग्राम मात्रा पेट साफ करने के लिए दी जाती है।
2. अधिक दस्त लाने के उद्देश्य से इसको समान मात्रा में नमक के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाना चाहिए।
3. पशुओं (गाय व भैंस) का ज्वर कम करने हेतु इसकी 50 से 125 ग्राम मात्रा खिलानी चाहिए।
4. मोच या सूजन आने पर इसको पानी में घोलकर गाढ़ा घोल बनाकर लगाने से पशु को आराम मिलता है।

2. अरण्डी का तेल–(Castor oil)

पहचान– यह अरण्डी के बीजों से प्राप्त किया जाता है। यह रंगहीन या हल्के पीले रंग का, हल्की गंधयुक्त, गाढ़ा तरल पदार्थ है जो चखने पर प्रारम्भ में स्वादहीन परन्तु बाद में अरुचिकर लगने लगता है। यह एल्कोहल में घुलनशील है।

उपयोग– यह मृदुरेचक तथा प्रोटेक्टिव के रुप में प्रयोग किया जाता है।

प्रयोग विधि–

1. यह पेट साफ करने के लिए बड़े पशुओं को 600 से 1200 मि.ली. तथा छोटे पशुओं को 50 से 125 मि.ली. दिया जाता हैं।
2. बच्चे को खीस न मिलने की स्थिति में पेट साफ करने के उद्देश्य से 10 मि.ली. मात्रा दिन में 2 या 3 बार पिलानी चाहिए।
3. पशु की आँख में कोई बाह्य वस्तु गिर जाने अथवा घाव होने पर इस तेल की कुछ बूंदे प्रोटेक्टिव के रुप में डालने से लाभ मिलता है।

(स) उत्तेजक

1. एल्कोहल–(Alcohol)

पहचान– यह एक उद्योग उत्पाद है जो रंगहीन, पारदर्शक, विशेष गंधयुक्त पतला तरल पदार्थ है। यह खुला रखने पर वाष्पीकृत हो जाता है। यह शीघ्र आग पकड़ लेता है।

उपयोग– एल्कोहल उत्तेजना उत्पन्न करने वाला तरल पदार्थ है। इसका आन्तरिक प्रभाव उत्तेजक तथा बाह्य प्रभाव रोगाणुनाशक होता है।

प्रयोग विधि–

1. पशुओं को थकान दूर करने व सर्दी से बचाव के लिए प्रौढ़ पशु को 500 मि.ली. मात्रा देनी चाहिए।
2. पशुओं को निमोनिया व इन्फ्लूएन्जा आदि रोगों में आन्तरिक उत्तेजक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए एल्कोहल पिलाया

जाता है।

3. इसका प्रयोग क्लोरोफार्म एवं टिंचर आयोडीन बनाने में भी किया जाता है।
4. मादा पशुओं को प्रसूति पीड़ा कम करने के उद्देश्य से भी इसे पिलाया जाता है।

2. कपूर–(Comphor)

पहचान– प्राकृतिक रुप से कपूर इसके पौधे की लकड़ी से आसवन विधि द्वारा प्राप्त किया जाता है। परन्तु इसे संश्लेषण विधि द्वारा भी बनाया जाता है। यह रंगहीन, पारदर्शक, विशेष गन्धयुक्त, ज्वलनशील, हल्का ठोस पदार्थ है जो वायु में खुला रखने पर वाष्पीकृत हो जाता है। कपूर स्वाद में कड़वा है परन्तु बाद में ठण्डा लगता है। यह एल्कोहल, ईथर व क्लोरोफार्म में शीघ्र घुल जाता है।

उपयोग– इसे उत्तेजक, जीवाणुरोधक, ज्वररोधी, कीटनाशी तथा गैसहर के रुप में उपयोग किया जाता है।

प्रयोग विधि–

1. कपूर तथा जैतून के तेल अथवा ईथर को 1:4 के अनुपात में मिलाकर पशुओं को सर्दी, जुकाम तथा खाँसी आदि से बचाने के लिए निम्नानुसार प्रयोग करना चाहिए–

   इंजेक्शन द्वारा– गाय व भैंस– 1.5 से 2.5 ग्राम
   मुँह द्वारा– गाय व भैंस– 10 से 15 ग्राम
   बकरी व भेड़– 1.5 से 3 ग्राम
2. कपूर को तुलसी के पत्तों के साथ पीसकर घावों पर लगाने से उनके कीड़े मर जाते हैं।
3. 100 ग्राम कपूर को 400 ग्राम मूँगफली के तेल में मिलाकर तैयार किया गये लिनीमैन्ट का लेप पशुओं की मोच, चोट दर्द आदि में लगाया जाता है।
4. छालों तथा घावों पर कपूर का निम्नलिखित जीवाणुरोधक पाउडर लगाने से बहुत लाभ होता है–
   कपूर 3.5 ग्राम, फिटकरी 7 ग्राम, जिंक ऑक्साइड 7 ग्राम, कार्बोलिक अम्ल 3.5 ग्राम तथा बोरिक अम्ल 2.25 ग्राम।
5. निमोनिया में 2 ग्रेन कपूर व 2 ग्रेन कस्तूरी को शहद में मिलाकर देने से पशु को आराम मिलता है।

(द) कृमिनाशक–

1. नीला थोथा–(Copper Sulphate)

पहचान– यह नीले रंग का कणदार, कसैले स्वाद वाला ठोस पदार्थ है। यह अधिक समय तक रखने पर हरे रंग का हो जाता है। यह उबलते पानी में घुलनशील है।

उपयोग– इसको कृमिनाशक, जीवाणुरोधक, वमनकारी तथा परजीविघ्न के रुप में उपयोग किया जाता है।

प्रयोग विधि–

1. इसके 1% घोल का प्रयोग आन्तरिक परजीवियों को नष्ट करने के लिए गाय–भैंस में 250–300 मि.ली. तथा भेड़–बकरी में 50–70 मि.ली. मात्रा में करना चाहिए।
2. इसके 1% घोल का प्रयोग मुँहपका रोग में पशुओं के खुरों को फुटबाथ या धोने के लिए किया जाता है।
3. दूषित चारागाहों में नीले थोथे के 2% घोल का छिड़काव करने से हानिकारक कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

2. फिनोविस–(Phenovis)

पहचान– इसका दूसरा नाम फिनोथाइजीन भी है। यह बारीक चिकना चूर्ण है जिसका नींबू जैसा पीला रंग होता है। यह स्वादहीन, पानी में अघुलनशील तथा हवा में खुला रखने पर ऑक्सीकृत होने वाला पदार्थ है।

उपयोग– इसका उपयोग कृमिनाशी के रुप में किया जाता है।

प्रयोग विधि–

1. इसको पशुओं के आमाशय एवं आँत में उपस्थित कृमियों को नष्ट करने के लिए प्रयोग किया जाता हैं।
2. गाय–भैंस में 30 से 45 ग्राम तथा भेड़ बकरी में 15–30 ग्राम औषधि पानी में घोलकर नाल द्वारा दो समान भागों में बाँटकर दो बार देने से कृमि नष्ट हो जाते हैं।

(य) स्तम्भक–

1. टिंचर आयोडीन–(Tincture Iodine)

पहचान– इसका मुख्य अवयव आयोडीन है जो बड़े–2 कणों वाला, गहरा नीलापन लिए चमकदार काला रंग, कणदार, विशेष गन्ध युक्त, ठोस है जो हवा में खुला रखने पर उड़ जाता है। यह एल्कोहल में घुलनशील होता है। इससे टिंचर आयोडीन निम्न प्रकार से बनाते हैं–

1. पोटैशियम आयोडाइड–	5 ग्राम
2. आयोडीन–	5 ग्राम
3. स्प्रिट–	1000 मि.ली.
4. शराब–	1000 मि.ली.
5. पानी–	10 मि.ली.

उपयोग– इसका उपयोग जीवाणुरोधक, जीवाणुनाशक, स्तम्भक व परजीविघ्न के रुप में किया जाता है।

प्रयोग विधि–

1. टिंचर आयोडीन का प्रयोग पशु की त्वचा को जीवाणु रहित करने में किया जाता है।

   इसका प्रयोग घावों की सड़न रोकने में भी किया जाता है। इसे साधारण सफाई के लिए रोगाणुनाशक के रुप में तथा

मक्खियों को भगाने के लिए भी प्रयोग करते हैं।

2. फिटकरी–(Alum)

पहचान– यह रंगहीन अथवा हल्का गुलाबी रंग का, बड़े कणदार ठोस पदार्थ है। इसका स्वाद मीठापन लिए कसैला होता है तथा यह पानी में घुलनशील है।

उपयोग– यह स्तम्भक एवं जीवाणुरोधक, के रुप में उपयोग में लाई जाती है।

प्रयोग विधि–

1. पशुओं के घावों से बहते रक्त को रोकने के लिए इसके चूर्ण या घोल का प्रयोग किया जाता है।
2. इसका 2 से 5% घोल पशु की आँख व गर्भाशय धोने के काम आता है।
3. खुरपका–मुँहपका रोग में इसका 1 से 2% घोल पशु के मुँह में छालों में लाभदायक होता है।
4. आन्तरिक रक्त प्रवाह रोकने के लिए पशु को फिटकरी भी खिलाई जा सकती है।

(र) मर्दन तेल–

1. तारपीन का तेल–(Turpentine oil)

पहचान– यह रंगहीन, पतला एवं स्वच्छ द्रव है जो चीड़ के वृक्ष से प्राप्त किया जाता है। यह विशेष गन्धयुक्त तथा स्वाद में तीखा व कड़वा होता है। एल्कोहल, ईथर, क्लोरोफार्म व ऐसीटिक अम्ल में यह घुलनशील है।

उपयोग– इसका उपयोग जीवाणुरोधक, परजीवीनाशक, एन्टीजाइमोटिक तथा गैसहर आदि रुपों में किया जाता है।

प्रयोग विधि–

1. इसका प्रयोग निमोनिया तथा प्लूरसी आदि रोगों में पशु की छाती पर मालिश करने के लिए किया जाता है।
2. सूजन या दर्द में सरसों के तेल में मिलाकर मालिश करने से पशु को आराम मिलता है।
3. आफरे में इसकी 30–60 मि.ली. मात्रा अन्य तेलों के साथ मिलाकर पशु को पिलाने से लाभ होता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. फफूँदी या जीवाणुओं से प्राप्त रसायन जो अन्य सूक्ष्म जीवों की वृद्धि रोकते हैं, तथा उन्हें नष्ट कर देते हैं, प्रतिजैविकी (Antibiotics) कहलाते हैं। उदाहरण– पैनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन आदि।
2. वे पदार्थ जो जीवाणुओं की वृद्धि को तो रोक देते हैं परन्तु जीवाणुओं को नष्ट नहीं करते हैं, जीवाणु रोधक या जीवाणु प्रतिरोधी (Antiseptics) कहलाते हैं। जैसे– लाल दवा, बोरिक एसिड आदि।
3. जो औषधियाँ रोगाणुओं अथवा जीवाणुओं को उनके बीजाणुओं सहित नष्ट कर देती हैं, रोगाणुनाशक या जीवाणुनाशक (Disinfectant) कहते हैं, जैसे– फिनायल, लायसोल, फिनोल आदि।
4. विरेचक उन पदार्थों को कहते हैं जिनके खाने से पशु को दस्त आने लगते हैं। इन्हें हल्के रेचक, मृदु रेचक व तीव्र रेचक तीन वर्गों में बाँटा गया है।
5. ऐल्कोहल, कपूर आदि वे पदार्थ हैं जिनके प्रयोग से शरीर में उत्तेजना का अनुभव होता है।
6. टिंक्चर आयोडीन व फिटकरी स्तम्भक पदार्थ हैं। स्तम्भक पदार्थ वे होते हैं जो रक्त वाहिनियों, श्लेष्मा झिल्ली व तन्तुओं में संकुचन उत्पन्न कर बहते हुये रक्त या द्रव को रोक देते हैं।
7. ज्वर में तापक्रम को कम करने वाली औषधि को ज्वर रोधी (Antipyretic) कहते हैं, जैसे– एस्प्रिन, कुनैन आदि।
8. फुफ्फुस नाल के उदासर्जन (Secretion) को बढ़ाने वाली औषधि को कफोत्सारक (Expectorant) तथा इसे कम करने वाली औषधि को कफरोधी (Anti Expectorant) कहते हैं।
9. विष के प्रभाव को कम करने वाली औषधि को विषघ्न (Antidote) कहते हैं। जैसे– लाल दवा।
10. क्लोरोफार्म, ईथर जैसे पदार्थ शरीर को अचेत कर देते हैं। इन्हें निश्चेतक या संवेदनहारी (Anaesthetics) कहते हैं।
11. सड़ाव–क्रिया रोकन वाले पदार्थ एन्टीजाइमोटिक्स (Antizymotics) कहलाते हैं। उदाहरण– बोरिक एसिड, कार्बोलिक एसिड आदि।
12. गैसहर या वातसारी (Carminatives) पदार्थ आमाशय व आँतों में गैसों का बनना कम करने व उन्हें बाहर निकालने का कार्य करते हैं, जैसे– ईथर, हींग, सौंफ आदि।
13. पीड़ाहारी या शूल शामक (Analgesics) उन पदार्थों को कहा जाता है। जो स्नायुओं (Nerves) की उद्दीप्यता (Irritability) को कम करके दर्द को कम करने का कार्य करते हैं। उदाहरण– एस्प्रिन, भांग आदि।
14. संवेदनमंदक या निद्रावह (Narcotics) से गहरी नींद आने के साथ–2 संवेद्यता, रक्त परिसंचरण व श्वास क्रिया में भारी उदासीनता आ जाती है। उदाहरण– क्लोरोफार्म, ईथर, भांग आदि।

15. शामक (Sedative) के अन्तर्गत शूलशामक व निद्रावह दोनों प्रकार की औषधियाँ शामिल होती हैं जो स्नायु संस्थान की अति उत्तेज्यता को शांत करती हैं।
16. त्वचा के परजीवियों को नष्ट करने वाली औषधियाँ परजीविघ्न (Anti-parasitics या Parasiticides) कहलाती हैं जैसे– फिनायल, नीला थोथा आदि।
17. दुर्गन्ध को ढकने या दूर करने वाले पदार्थों को गन्धहारक या दुर्गन्धनाशी कहते हैं। उदाहरण– फिनाइल, ब्लीचिंग पाउडर आदि।
18. शरीर में उपस्थित कृमियों को जो औषधियाँ नष्ट कर देती हैं उन्हें कृमिनाशी (Vermifuge) तथा जो कृमियों को शरीर से केवल बाहर निकाल देती हैं उन्हें कृमिहारक कहते हैं।
19. नमक, नीला थोथा, फिटकरी आदि ऐसे पदार्थ वमनकारी (Emetics)कहलाते हैं जिनके खाने से वमन या उल्टी होने लगती है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. निम्न पदार्थों में से रोगाणुनाशक हैं–
   (अ) सरसों का तेल (ब) फिनोविस
   (स) फिनाइल (द) उपर्युक्त सभी
2. पशुओं के घावों को धोने के काम में प्रयोग किया जाता है–
   (अ) लाल दवा (ब) नौसादर
   (स) अरण्डी का तेल (द) मैगसल्फ
3. उत्तेजक के रुप में काम लेते हैं–
   (अ) फिनोल (ब) फिनाइल
   (स) एल्कोहल (द) लाइसोल
4. खुरपका–मुँहपका रोग में खुर धोने हेतु फुट बाथ में काम आता है–
   (अ) फिनोविस (ब) आयोडीन
   (स) तारपीन का तेल (द) नीला थोथा

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

5. ज्वर में ताप कम करने वाली औषधियों को क्या कहते हैं?
6. जहर के असर को कम करने वाली औषधियाँ किस नाम से जानी जाती हैं?
7. उन औषधियों को क्या कहते हैं? जो कृमियों को बिना मारे ही शरीर से बाहर निकाल देती हैं?
8. बाह्य परजीवियों को नष्ट करने हेतु फिनाइल का कितने प्रतिशत घोल का प्रयोग किया जाता है?
9. पशुओं के 'पाद स्नान' (Foot bath) हेतु नीला थोथा का कितने प्रतिशत घोल को काम में लिया जाता है?
10. किन्हीं तीन प्रति जैविकी (Antibiotics) औषधियों के नाम लिखो।

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

11. फिनाइल के दो उपयोग लिखो।
12. विरेचक किसे कहते हैं? ये कितने प्रकार के होते है? लिखिए।
13. उत्तेजक पदार्थों को परिभाषित कीजिए।
14. जीवाणुरोधक (Antiseptics) तथा जीवाणुनाशक (Antibiotics) में अन्तर लिखो।
15. कफोत्सारक (Expectorant) व कफरोधी (Anti-Expectorant) में अन्तर लिखिए।
16. कृमिनाशक (Vermicides) व कृमिहारक (Vermifuge) में अन्तर लिखिए।
17. प्रमुख दुर्गन्धहारक (Deodorants) पदार्थों के नाम लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

18. किन्हीं दो रोगाणुनाशक पदार्थों का वर्णन कीजिए।
19. स्तम्भक क्या हैं? टिंचर आयोडीन बनाने की विधि, उसके उपयोग एवं प्रयोग विधि का वर्णन कीजिए।
20. कपूर की पहचान, उपयोग तथा प्रयोग विधि का वर्णन कीजिए।
21. मर्दन तेल किसे कहते हैं? तारपीन के तेल की पहचान, उपयोग तथा प्रयोग करने की विधि का वर्णन करो।
22. फिनोल (Carbolic-Acid) का विस्तृत वर्णन कीजिए।
23. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखो–
   (अ) लाल दवा (ब) अरण्डी का तेल
   (स) फिनोविस (द) लाइसोल
   (य) एल्कोहल (र) फिटकरी
   (ल) फिनाइल

उत्तरमाला–

1. (स) 2. (अ) 3. (स) 4. (द)

अध्याय–20
मुर्गीपालन (Poultry Farming)

20.1 मुर्गीपालन की स्थिति एवं महत्व

(Present status and importance of Poultry Farming) – प्रायः मुर्गीपालन (Poultry Farming) का आशय उन कुक्कुट (Fowl) के पालने से लिया जाता हैं, जिन्हें अण्डा उत्पादन या मांस प्राप्ति के उद्देश्य से एक स्थान पर रखा जाता हैं। जबकि मुर्गीपालन में कुक्कुट(Fowl) के अलावा अण्डे देने वाले अन्य पक्षी जैसे बत्तख, बड़ी मुर्गी (टर्की), बटेर आदि भी सम्मिलित हैं। वर्तमान में पालतू मुर्गी को जंगली मुर्गी (*Gallus gallus*) से सम्बन्धित किया गया है।

वर्तमान स्थितिः– हमारे देश में मुर्गीपालन व्यवसाय पांच हजार वर्षों से भी अधिक पुराना है। प्राचीन काल में पूर्वी भारत में पाई जाने वाली असील नस्ल को लोग लड़ाने के लिये पालते थे। बाद में लोग अपने घरों में ही 5–7 मुर्गियों को अण्डा उत्पादन के उद्देश्य से भी पालने लगे। वर्तमान पालतू मुर्गी को जंगली मुर्गी (*Gallus gallus*) से संबंधित किया गया है। आजकल हमारे देश में विदेशी नस्ल व्हाइट लैग हॉर्न को अधिक पाला जा रहा हैं। सर्वप्रथम अमेरिका से 30000 चूजे इस नस्ल के मंगवाकर उन्हें 3 से 8 सप्ताह की उम्र में विभिन्न राज्यों को वितरित किया गया। मुर्गीपालन विकास हेतु केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारें ऋण एवं अनुदान उपलब्ध करवा रही हैं तथा साथ ही उन्नत नस्लों की मुर्गियों के अण्डे एवं चूजों के विकास पर भी ध्यान दे रही हैं। इस हेतु 1979 में उ.प्र. में इज्जतनगर में केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान की स्थापना की गई। केन्द्रीय मुर्गी प्रजनन फार्म मुम्बई, भुवनेश्वर एवं हसरघाटा में अण्डा उत्पादन हेतु नई संकर नस्लें विकसित की गई हैं। इसके अतिरिक्त कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा निरन्तर शोध कार्य किया जा रहा है।

यद्यपि पिछले दशक में हमारे देश ने इस व्यवसाय में काफी प्रगति की है। इस वर्ष 2014–15 में अण्डा उत्पादन 78.5 अरब हो गया है। पाउल्ट्री न्यूज 27 मई, 2014 के अनुसार वर्ष 2013 में कुक्कुट मांस 3.5 मिलियन टन था तथा मांस की उपलब्धता 2.8 कि.ग्रा. प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष रही, जबकि इस अवधि में अण्डा उत्पादन 70 अरब हो गया एवं अण्डों की खपत 57 अण्डे प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष हो गई। परन्तु अन्य देशों की तुलना में हम अभी भी बहुत पीछे हैं।

कृषि एवं संसाधित खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (एपिडा) के अनुसार वर्ष 2013–14 में कुक्कुट उत्पादों का निर्यात 565 करोड़ रूपये था।

भारत में मुर्गीपालन के क्षेत्र में आन्ध्र प्रदेश का प्रथम स्थान हैं। इसके पश्चात् तमिलनाडु, पं. बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक का स्थान हैं। राजस्थान इस व्यवसाय में बहुत पीछे है परन्तु अजमेर जिला मुर्गीपालन क्षेत्र में अग्रणी है। अजमेर के आस पास के क्षेत्र में बड़ी संख्या में बड़े–2 निजी कुक्कुट फार्म स्थापित हैं। यहाँ से अण्डे प्रदेश के अन्य शहरों तथा देश के दूसरे शहरों व महानगरों में भी भेजे जाते हैं। पशुपालन निदेशालय राजस्थान, जयपुर के प्रशासनिक प्रतिवेदन के अनुसार राजस्थान में 2012 की पशुगणना में मुर्गियों की संख्या लगभग 80.24 लाख तथा अण्डों का उत्पादन लगभग 1320 मिलियन है। प्रदेश की शुष्क जलवायु तथा सिंचाई सुविधाओं की कमी को ध्यान में रखते हुये इस व्यवसाय को प्रोत्साहन दिया जाना नितान्त आवश्यक है। इसीलिए राज्य सरकार द्वारा राजकीय कुक्कुट विकास केन्द्र एवं मुर्गीपालन सहकारी समितियाँ प्रदेश के प्रमुख जिलों में स्थापित की गई हैं। ये संस्थाऐं सन्तुलित आहार तथा अण्डों के विपणन में मुर्गीपालकों का सहयोग कर रही हैं। प्रदेश में कोटा, अजमेर व उदयपुर में मैरेक्स व पुलोरम रोग की नियंत्रण इकाईयाँ इनकी जाँच व नियंत्रण का कार्य कर रही हैं।

मुर्गीपालन का महत्त्वः– हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या आज भी अशिक्षा तथा गरीबी आदि कई कारणों से कुपोषण का शिकार है। स्वस्थ रहने के लिये व्यक्ति को भोजन में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन्स एवं खनिज लवणों की पर्याप्त मात्रा की आवश्यकता होती है। इन अवयवों से परिपूर्ण आहार को ही सन्तुलित आहार की संज्ञा दी जाती है। इन अवयवों में से किसी भी अवयव की कमी होने पर व्यक्ति में कई प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। मुर्गीपालन व्यवसाय को बढ़ावा देकर तथा व्यक्तियों को जागरुक बनाकर इस कुपोषण की समस्या को

सुगमता से दूर किया जा सकता है, क्योंकि अण्डे तथा माँस में ये तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, जैसा कि अग्र तालिकाओं से स्पष्ट हैं–

सारिणी–20.1 अण्डे में पाये जाने वाले अवयव (प्रतिशत में)

क्र.सं.	अवयव	सम्पूर्ण अण्डा	श्वेतक	जर्दी	कवच
		100	58	31	11
1.	जल	66.5	88.0	48.4	–
2.	प्रोटीन	11.8	11.0	17.5	–
3.	वसा	11.0	0.2	32.5	–
4.	खनिज लवण	10.7	0.8	2.0	96.6

अण्डे में फॉस्फोरस, कैल्शियम, लोहा आदि खनिज तत्व तथा विटामिन ए, डी, तथा बी (कॉम्पलैक्स समूह) प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

सारणी 20.2 मुर्गी मांस (चिकन) में पाये जाने वाले अवयव (% में)

क्र.सं.	अवयव का नाम	प्रतिशत मात्रा
1.	जल	65–80
2.	प्रोटीन	16–22
3.	वसा	1.5–13
4.	खनिज पदार्थ	0.65–01
5.	कार्बोहाइड्रेट	0.50–01.5

एक मुर्गी के अण्डे का औसत भार 58 ग्राम होता है जिसमें 34 ग्राम श्वेतक तथा 18 ग्राम जर्दी होती है।

अण्डों के बारे में लोगों में कुछ मिथ्या धारणायें पाई जाती हैं जैसे कि अण्डा हृदय रोग को बढ़ावा देता है तथा शरीर में अधिक गर्मी पैदा करता हैं, इसलिए इसे गर्मियों में नहीं खाना चाहिये। जबकि इन दोनों ही बातों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। वैज्ञानिको ने निष्कर्ष निकाला है कि अण्डे में उपस्थित (पाये जाने वाले) कॉलेस्ट्रॉल की अपेक्षा शर्करा हृदय रोग का एक मुख्य कारण है तथा एक अण्डे से मात्र 80 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है जो एक रोटी से मिलने वाली ऊर्जा से थोड़ी ही अधिक है।

आजकल कुक्कुट शालाओं में मुर्गियों को बिना मुर्गे (नर) के ही रखा जाता है। अतः इनसे प्राप्त अण्डे जीव रहित होते हैं। इनसे चूजे उत्पन्न नहीं होते हैं, इसीलिए इन अण्डों को अनिषेचित अण्डे (Infertile Eggs) भी कहा जाता है। यदि कुक्कुट फार्म पर अण्डों से चूजे प्राप्त करने हों तो प्रति दस मुर्गियों पर एक नर अर्थात् 10:1 के अनुपात में मुर्गे रखने चाहिये तथा मुर्गे रखने के 10 दिन बाद ही चूजे प्राप्त करने हेतु अण्डों को लेना चाहिए।

माँसाहारी व्यक्तियों के लिए भी अन्य माँस की तुलना में मुर्गियों का माँस अधिक उपयोगी माना जाता है, क्योंकि इसमें चर्बी (वसा) की तुलना में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है। आजकल मुर्गी के मांस को सफेद माँस (White meat) तथा अन्य माँस को लाल माँस (Red meat) कहा जाता हैं।

कुछ वर्षों पूर्व तक मुर्गीपालन व्यवसाय को बहुत ही जोखिम भरा माना जाता था। इसका प्रमुख कारण यह था कि मुर्गियों में बीमारियाँ अधिक फैलती थीं जिससे बड़ी संख्या में मुर्गियों के मर जाने से बहुत अधिक आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता था, परन्तु आजकल विभिन्न बीमारियों से बचाव के लिये समय–2 पर टीकाकरण कराकर इस व्यवसाय को सुरक्षित व्यवसाय बनाया जा सकता है।

मुर्गीपालन के लाभ :– हमारे देश की परिस्थितियों, आवश्यकताओं एवं वातावरण आदि को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हैं कि मुर्गीपालन व्यवसाय को अधिकाधिक लोगों द्वारा अपनाया जाये। इस व्यवसाय के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

1. देश में मनुष्यों के आहार में प्रोटीन की कमी आमतौर पर देखी जाती है जबकि आहार विशेषज्ञों के अनुसार एक स्वस्थ वयस्क व्यक्ति के लिये प्रतिदिन 60 ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है, जिसमें से एक तिहाई अर्थात् 20 ग्राम पशु जनित प्रोटीन होनी चाहिये। इसकी पूर्ति अण्डे या माँस द्वारा करके कुपोषण दूर किया जा सकता है।
2. इस व्यवसाय को अपेक्षाकृत कम पूँजी द्वारा प्रारम्भ किया जा सकता है।
3. व्यवसाय प्रारम्भ करने के लगभग 2 माह (8 सप्ताह) बाद ब्रायलर मुर्गियों को बेचकर तथा पाँच माह बाद अण्डों को बेचकर आय प्राप्त होने लगती हैं।
4. व्यवसाय प्रारम्भ करने हेतु थोड़ी सी तकनीकी जानकारी की आवश्यकता हैं। इस व्यवसाय में अपेक्षाकृत कम स्थान एवं कम श्रम की आवश्यकता होती है।
5. परिवार के सभी सदस्यों के खाली समय का सदुपयोग हो जाता है।
6. मुर्गियों की बीट से उत्तम किस्म की खाद बनती है।
7. घर या अन्य उद्योग आदि का उत्सर्जित पदार्थ जो उनके लिये बेकार होता है, को मुर्गी आहार के रुप में प्रयोग किया जा सकता है।
8. कुक्कुट फार्म पर नर (मुर्गे) न रखने के कारण उन पर होने वाला व्यय न करने से अधिक लाभ प्राप्त होता है।

9. अउर्वर अण्डों को उर्वर अण्डों की अपेक्षा अधिक समय तक संग्रह किया जा सकता है।
10. अधिकाँश फसलों की खेती से जहाँ कई माह बाद आय प्राप्त होती है तथा वह भी एक बार ही जब फसल तैयार होती है वहीं मुर्गीपालन से सब्जियों की खेती के समान आय नियमित रुप से तथा कम अन्तराल पर निरन्तर प्राप्त होती रहती है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे व्यक्ति जो पूर्ण रुप से कृषि या मजदूरी पर निर्भर हैं, तथा जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर है वे लोग इस व्यवसाय को अपनाकर न केवल अपनी स्वयं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति सुदृढ़ बना सकते हैं, बल्कि इस देश से कुपोषण जैसी समस्या को दूर करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

20.2 मुर्गियों का वर्गीकरण एवं प्रमुख नस्लें (Classification of Poultry Breeds and important breeds) –

इस अध्याय में मुर्गियों का वर्गीकरण एवं नस्लों का अध्ययन करेंगे। नस्ल का अर्थ मुर्गियों के उस समूह से है जिसके सभी सदस्यों के पूर्वज एक ही वंश के हों और वे सभी आकार एवं रूप में एक समान हों, एवं उनसे पैदा होने वाली सन्तान भी बिलकुल माता–पिता के ही समान हो। मुर्गियों की अनेक जातियाँ हैं, जिनके गुण तथा शारीरिक लक्षणों में भी भिन्नता होती है। यही कारण है कि उनका पालन–पोषण किसी एक विशेष उद्देश्य के लिये होता है, जैसे कुछ जातियों का अधिक अण्डे देने का गुण होता है, जबकि कुछ अधिक एवं स्वादिष्ट मांस के लिये उपयोगी होती हैं। भारत में मुर्गियों की जातियों को अग्रलिखित 2 वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. उत्पत्ति स्थान के आधार पर।
2. उपयोगिता के आधार पर।

1. उत्पत्ति स्थान के अनुसार मुर्गियों का वर्गीकरण– (Classification of fowls on the basis of origin place)

(i) देशी या भारतीय नस्लें (Indigenous breeds)- असील, चीतागोंग, घाघस, कड़कनाथ आदि

(ii) एशियाई वर्ग (Asiatic breeds)- बृहमा, कोचीन तथा लैंगशन आदि

(iii) इंगलिश वर्ग (English breeds) -ससेक्स, आस्ट्रेलार्प, आपिंगटन, कोर्निश तथा रेड कैप आदि।

(iv) अमेरिकन वर्ग (American breeds)- वायण्डाट, रोड आइलैण्ड रेड, न्यूहैम्पशायर तथा प्लाईमाऊथ रॉक आदि।

(v) भूमध्यसागरीय वर्ग (Mediterranean breeds)- लैग हॉर्न, ब्ल्यू एनडल जियन, एनकोवा तथा मिनोरका आदि।

(vi) पोलिश वर्ग- (Polish breeds) पोलिश

2. उपयोगिता के आधार पर मुर्गियों का वर्गीकरण (Classification of fowls on the basis of utility)

(i) अण्डा देने वाली जातियाँ(Egg producing breeds)- मिनोरका, व्हाइट लैगहॉर्न तथा एनकोना आदि।

(ii) माँस देने वाली जातियाँ (Meat producing breeds)- बृहमा, ससैक्स, लैंगशन तथा असील आदि

(iii) द्वि–उद्देश्यीय जातियाँ (Dual purpose breeds)

ऐसी मुर्गियों को जिनसे अण्डा तथा माँस दोनों प्राप्त किये जा सकते हैं, द्वि–उद्देश्यीय जातियाँ कहते हैं। ये निम्नलिखित हैं – न्यूहैम्पशायर, डोरकिंग, आस्ट्रेलार्प, रोड आइलैण्ड रेड तथा प्लाईमाऊथ रॉक आदि

प्रमुख नस्लें (Important breeds)

1. रोड आइलैण्ड रेड (Rhode Island Red)

मूल स्थान :– इस नस्ल का मूल स्थान अमेरिका का रोड आइलैण्ड (Rhode Island) हैं। यह नस्ल मलायगेम, लेगहार्न तथा एशियाटिक मूल की नस्ल के संकरण से विकसित की गई हैं।

चित्र 20.2.1 रोड आइलैण्ड रेड मुर्गी

विशेषताएँ : इस मुर्गी का शरीर लम्बा, आयताकार (Rectangular) तथा चौड़ा होता हैं। इसकी पीठ समतल, सीना आगे की ओर उभरा हुआ होता हैं। जो अच्छी मांस उत्पादन नस्ल के गुण हैं। इसके पंखों (Plumage) का रंग गहरा या भूरा लाल होता हैं। जो पूरे शरीर पर होता है। उड्डयन परों के प्राइमरी तथा सेकण्डरी सिकिल परों, पूँछ के मुख्य परों का रंग काला होता हैं। गहरे रंग के स्थान पर आजकल चॉकलेट रंग के पक्षी अति सामान्य हैं। इसमें सिंगल कलगी (Single comb) तथा रोज कलगी (Rose comb) वाली किस्में (Variety) पायी जाती हैं। मुर्ग (Cock) का सामान्य वजन 3.8 किलोग्राम मुर्गी (Hen) का 3.0 किलोग्राम होता हैं। तथा अण्डे का रंग भूरा (Brown) या गहरा भूरा (Dark brown) होता हैं।

उपयोगिता :– इसकी अण्डा उत्पादन क्षमता अधिक होती हैं। तथा मांस भी उत्तम किस्म का प्राप्त होता हैं। ये पक्षी विपरीत परिस्थितियों में भी भलीभांति पनपते हैं।

2. व्हाइट लैगहॉर्न (White Leghorn)

मूल स्थान:– इस नस्ल का मूल स्थान इटली हैं। सन् 1835 में यह नस्ल अमेरिका पहुँची और फिर इंग्लैण्ड। भारत में 1920 के लगभग इस नस्ल का आगमन हुआ।

विशेषताएँ : व्हाइट लैगहॉर्न (White Leghorn) मेडीटिरेनियन वर्ग (Class) की नस्लों में सबसे अच्छी नस्ल हैं। लैगहोर्न नस्ल की 12 किस्में (Varieties) हैं। जिनमें से व्हाइट लैगहोर्न भी एक किस्म हैं। यह आकर्षक नस्ल की मुर्गी है। इस नस्ल के पक्षी छोटे आकार के क्रियाशील (Active) साफ सुथरे (Neat & Clean) होते हैं। इसका सिर छोटा जिस पर कलगी (Comb) गलचर्म (Wattle) सुव्यवस्थित रहते हैं। टांगे पंख रहित तथा पैर छोटे होते हैं। इसका रंग सफेद तथा चोंच व टांगें पीली होती हैं। इसका शरीर ठोस होता हैं। पूँछ सदैव नीचे की तरफ झुकी रहती हैं। इसकी पीठ लम्बी, छाती चौड़ी होती हैं।

चित्र 20.2.2 व्हाइट लैगहॉर्न मुर्गी

उपयोगिता :– सफेद लैगहोर्न अण्डा देने वाली एक अच्छी किस्म हैं। यह नस्ल एक वर्ष में लगभग 240 अण्डे देती हैं। इस नस्ल के कई प्रभेद (Strains) विकसित कर ली गई हैं। जिनका अण्डा उत्पादन 300 से भी अधिक है। लेकिन यह नस्ल मांस के लिये उपयोगी नहीं हैं। ये मुर्गियाँ पाँच–छः माह की उम्र पर अण्डा देना प्रारम्भ कर देती हैं।

3. रेड कोर्निस (Red Cornish)

मूल स्थान :– यह नस्ल असील व मलाया तथा इंगलिश लड़ाकू नस्लों के संकरण से इंग्लैण्ड में विकसित की गई हैं।

विशेषताएँ : इस नस्ल की मुर्गियों के कंधे दूर–दूर होते हैं। तथा सीना चौड़ा एवं भरा हुआ होता हैं। इनकी कलगी मटर की किस्म की होती हैं। इसकी त्वचा का रंग पीला होता हैं।

चित्र 20.2.3 रेड कोर्निस मुर्गी

उपयोगिता :– अण्डों की बजाय मांस ज्यादा प्राप्त होता हैं। तथा मांस स्वादिष्ट होने के कारण सभी जगह यह नस्ल मांस के लिये पाली जा रही हैं। भारत में देशी नस्लों से इसका संकरण कराया जा रहा हैं।

4. प्लाईमाउथ रॉक (Plymouth Rock)

मूल स्थान :– इस नस्ल का मूल स्थान अमेरिका हैं।

विशेषतायें : ये मुर्गियाँ आकार में बड़ी होती हैं। इनका शरीर अधिक चौड़ा और कम लम्बा होता हैं। इसकी चमड़ी तथा टांगे पीली होती हैं। इसकी कलगी बड़ी (Single comb) होती हैं। शरीर के रंग विन्यास के आधार पर इसकी सात किस्में हैं। इसकी धारीदार तथा सफेद किस्में अधिक प्रचलित हैं। मादा मुर्गियों के टखनों (Shank) पर प्रायः काले धब्बे होते हैं।

चित्र 20.2.4 प्लाईमाउथ रॉक मुर्गी

उपयोगिता :– इस नस्ल से प्राप्त उत्तम कोटि का माँस व्यापारिक दृष्टि से उपयोगी हैं। इस नस्ल की अण्डा उत्पादन क्षमता सामान्य होती हैं। मुर्गे का शरीर भार लगभग 4.3 किलोग्राम तथा मुर्गी का 3.4 किलोग्राम होता हैं।

20.3 अण्डे की संरचना
(Structure of egg)

संरचना :– मुर्गी के अण्डे का पोषक महत्त्व जानने के लिए यह अति आवश्यक है कि अण्डे की आन्तरिक संरचना के बारे में जाना जाये। अण्डे की संरचना का विस्तृत वर्णन नीचे दिया गया है :–

1. **कवच (Shell)–** यह अण्डे का बाह्य कवच होता है, जिसे आमतौर पर छिलका भी कहा जाता है। इसका रंग मुर्गी की नस्ल के अनुसार सफेद या भूरा होता है। यह पतला, छिद्र युक्त **(Porous)** तथा शीघ्र टूटने वाला होता है। इस पर 600 से 800 गोल छिद्र होते हैं। जिनसे नमी तथा गैसों का आदान प्रदान होता रहता है। कवच में भारात्मक दृष्टि से लगभग 94 प्रतिशत कैल्सियम कार्बोनेट होता है। इसका प्रमुख कार्य अण्डे के आन्तरिक भागों की सुरक्षा करना हैं।

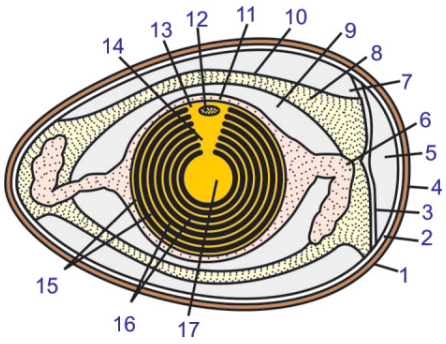

चित्र 20.3.1 अंडे की आंतरिक संरचना

1. कवच या बाह्य आवरण (Cuticle layer or shell)
2. बाह्य कवच झिल्ली (Outer shell membrane))
3. अन्तः कवच झिल्ली (Inner shell membrane)
4. रन्ध्र (Pores)
5. वायु कोश (Air space or air shell)
6. चैलजा (Chalaza)
7. पतली सफेदी की बाह्य तल (Outer layer of thin albumen)
8. गाढ़ी सफेदी की अन्तः तल (Middle layer of dense albumen)
9. पतली सफेदी की अन्तः तल (Inner layer of thin albumen)
10. चैलाजी स्तर (Chalaziferous)
11. पीतकी झिल्ली (Vitelline membrane)
12. जनन चतिका (Blastoderm or germinal disc)
13. केन्द्रक पैन्डर (Nucleus pander)
14. लैटेब्रा ग्रीवा (Neck of latebra)
15. गहरा या पीला अण्डपीत (Dark or yellow yolk)
16. हल्का या सफेद अण्डपीत (Light or white yolk)
17. लैटेब्रा (Latebra)

2. **कवच झिल्ली (Shell membrane)–** कवच के अन्दर की ओर दो पतली झिल्लियाँ होती हैं, जिन्हें कवच झिल्लियाँ कहा जाता है। इनमें से एक झिल्ली कवच के साथ मजबूती से चिपकी रहती है, जिसे सरलता से कवच से अलग नहीं किया जा सकता है। इस झिल्ली को बाह्य कवच झिल्ली कहते हैं। दूसरी भीतरी कवच झिल्ली बाह्य झिल्ली के अन्दर की ओर होती है, जो अण्डे की सफेदी **(Egg white)** से लगी रहती है। अण्डे के चौड़े सिरे पर वायु स्थान **(Air space)** होने के कारण दोनों कवच झिल्लियों के मध्य अधिक जगह होती है। ये झिल्लियाँ कवच को मजबूती प्रदान करने एवं भ्रूण को कैल्सियम उपलब्ध कराने का कार्य करती हैं।

3. **अण्डे की सफेदी या श्वेतक या एलब्यूमिन (Egg white or Albumen)–** इसे निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता हैं।

(अ) बाह्य पतली सफेदी या श्वेतक (Outer thin white or Albumen)

(ब) आन्तरिक पतली सफेदी या श्वेतक (Inner thin white or Albumen)

(स) गाढ़ी सफेदी या श्वेतक (Middle thick white or Albumen)

अण्डे के दोनों सिरों के अलावा बाह्य पतला श्वेतक, भीतरी कवच झिल्ली के साथ लगा होता हैं। जबकि गाढ़ा श्वेतक दोनों पतले श्वेतकों के मध्य में स्थित होता है। अण्डे का श्वेतक या एलब्यूमिन जर्दी एवं भ्रूण को बाहरी आघातों से बचाने तथा भ्रूण को पोषण देने का कार्य करता है। अण्डे को अधिक दिनों तक रखने अथवा अधिक तापमान पर रखने पर यह श्वेतक पानी के समान पतला हो जाता है।

4. **श्वेतक रज्जू या चैलेजा –(Chalaza)** यह वास्तव में गाढ़े श्वेतक का ही एक भाग होता है, जो सफेद रज्जुओं **(Cords)** के रुप में एक दूसरे के विपरीत दिशाओं में ऐंठी हुई सी प्रतीत होती हैं। ये रज्जुएँ जर्दी से अण्डे के सिरे तक फैली होती हैं। इसका कार्य अण्डे की जर्दी को मध्य में स्थिर रखना होता है।

5. **अण्डे की जर्दी–(Egg Yolk)** यह अण्डे के मध्य में स्थित हल्के पीले रंग का पीतक झिल्ली **(Vitelline membrane)** से घिरा हुआ गोलाकार तथा कुछ–2 चपटा भाग होता है। यह विभिन्न परतों के जमाव से बना होता है,

जिन्हें संकेन्द्रीय परतें भी कहतें है। जर्दी के ऊपर एक बिन्दु जैसी रचना अण्डाणु **(Blastoderm)** होती है, जिसे अउर्वर या अनिषेचित अण्डों में जर्मस्पॉट **(Germ spot)** तथा उर्वर अण्डों में जर्मडिस्क **(Germ disc)** कहते है। उर्वर या निषेचित अण्डों को सेयने पर ही भ्रूण बनता है। जर्दी का भीतरी भाग सफेद रंग का होता है। जर्दी विकसित हो रहे भ्रूण के लिये पोषण का कार्य करती है। इसमें पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन एवं वसा होती है तथा अल्प मात्रा में कार्बोहाइड्रेट, अकार्बनिक लवण एवं विटामिन्स भी होते हैं।

20.4 मुर्गियों का आहार एवं आवास प्रबन्धन (Poultry feeds and housing management)

– मुर्गीपालन व्यवसाय का एक उद्देश्य मनुष्यों के लिए प्रोटीनयुक्त आहार उपलब्ध कराना है। मुर्गी के अण्डे एवं माँस से प्रचुर मात्रा में प्रोटीन तो प्राप्त होती ही है इसके साथ ही इनके उत्पादन में कम पूँजी एवं श्रम की आवश्यकता पड़ती है।

मुर्गीपालन व्यवसाय में लगभग 60–70% व्यय आहार पर ही होता हैं। अतः आहार पर अधिक ध्यान देना आवश्यक है। मुर्गी आहार में जल, कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, खनिज पदार्थ, विटामिन्स तथा प्रति जैविक पदार्थ (Antibiotics) शामिल होने चाहिए। मुर्गी के आहार में औसतन कार्बोहाइड्रेट आहार 70–80% वसा आहार 2–5% प्रोटीन आहार 10–20% खनिज आहार 0.8–1.0% तथा विटामिन्स भी उचित मात्रा में होने चाहिए।

आहार की मात्रा– मुर्गियों के आहार की मात्रा उनको पालने के उद्देश्य, नस्ल तथा आयु आदि कई बातों पर निर्भर करती है। सामान्यतः 100 वृद्धिरत पक्षियों को 9 वें सप्ताह में 40 कि.ग्रा, 10 वें सप्ताह में 43 किग्रा. आहार देना चाहिए। इसके बाद 11 वें सप्ताह तक प्रति सप्ताह एक किग्रा. आहार की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए अण्डा देने वाली मुर्गियों के लिए प्रति मुर्गी 100–120 ग्राम दाना प्रतिदिन देना चाहिए। इस प्रकार अण्डे देने वाली 100 मुर्गियों के लिए 21–24 सप्ताह में 10 किग्रा., 25–28 सप्ताह में 11 किग्रा., 29–40 सप्ताह में 13 किग्रा., 41–60 सप्ताह में 14 किग्रा. तथा 61–75 सप्ताह में 15 किग्रा. आहार प्रतिदिन देना चाहिए।

आहार निर्धारण के सिद्धान्त– मुर्गियों की आवश्यकताओं तथा अवस्थाओं के अनुसार आजकल बाजार में निम्नलिखित प्रकार के आहार उपलब्ध हैं–

1. प्रारम्भिक आहार (Starter ration)
2. वृद्धि आहार (Grower's ration)
3. अण्डा उत्पादन आहार (Layer's ration)
4. प्रजनक आहार (Breeder's ration)
5. ब्रॉयलर प्रारम्भिक आहार (Broiler's starter ration)
6. ब्रॉयलर फिनिशर आहार (Broiler's finisher ration)

सामान्यतः एक दिन से 8 सप्ताह तक की आयु के चूजों के लिए प्रारम्भिक आहार 8 से 20 सप्ताह के पक्षियों के लिए ग्रोअर्स राशन तथा 20 सप्ताह से अधिक आयु की मुर्गियाँ जो अण्डा उत्पादन के लिए पाली जाती हैं, के लिए लेयर्स राशन दिया जाता है। इसी प्रकार प्रजनन कार्य हेतु पाले गये पक्षियों को ब्रीडर्स राशन, तथा माँस उत्पादन के उद्देश्य से पाले गये पक्षियों को प्रारम्भिक अवस्था में ब्रॉयलर प्रारम्भिक आहार तथा बाद में ब्रायलर फिनिशर आहार दिया जाता है।

सन्तुलित आहर तैयार करना– आहार में भार के आधार पर निम्नलिखित प्रकार से विभिन्न प्रकार के पक्षियों के लिए सन्तुलित आहार तैयार किये जा सकते हैं–

सारिणी–20.4.1 स्टार्टर आहार (Starter ration)

क्र.सं.	खाद्य पदार्थ का नाम	आहार–1	आहार–2
1.	चावल पालिस	25%	20%
2.	मूँगफली की खली	20%	20%
3.	पीली मक्का	20%	15%
4.	गेहूँ का चापड़	15%	15%
5.	ज्वार 10%	20%	
6.	मछली का चूरा	6.5%	6.5%
7.	लाइम स्टोन (मार्बल ग्रीट)	1%	1%
8.	हड्डी का चूर्ण	1%	1%
9.	प्रिमिक्स	1%	1%
10.	नमक	0.5%	0.5%
	योग	**100%**	**100%**

सारिणी–20.4.2 ग्रोअर्स आहार (Grower's Ration)

क्र.सं.	खाद्य पदार्थ का नाम	आहार–1	आहार–2
1.	चावल पालिस	22%	20%
2.	मूँगफली की खली	20.5%	12.5%
3.	ज्वार	20%	20%
4.	पीली मक्का	10%	10%
5.	गेहूँ का चापड़	10%	20%
6.	मछली का चूर्ण	7%	7%
7.	लाइम स्टोन	3.5%	3.5%
8.	हड्डी का चूरा	1%	1%
9.	प्रिमिक्स	1%	1%
10.	शीरा या लपटी	4.5%	4.5%
11.	नमक	0.5%	0.5%
	योग	**100%**	**100%**

सारिणी–20.4.3 लेअर्स आहार (Layer's ration)

क्र.सं.	खाद्य पदार्थ का नाम	आहार–1	आहार–2
1.	चावल पालिस	22%	24%
2.	मूँगफली की खली	10%	10%
3.	पीली मक्का	12%	20%
4.	ज्वार	25%	13%
5.	गेहूँ का चापड़	15%	15%
6.	मछली का चूर्ण	4%	5%
7.	लाइम स्टोन	3%	3%
8.	हड्डी का चूर्ण	2%	1%
9.	प्रिमिक्स	1%	1%
10.	शीरा या लपटी	5%	7%
11.	नमक	1%	1%
	योग	**100%**	**100%**

ब्रॉयलर्स राशन– सामान्यतः ब्रॉयलर को लगभग 6 से 8 सप्ताह की आयु में बेच दिया जाता है क्योंकि 6 सप्ताह की आयु में एक ब्रॉयलर का वजन लगभग 1.5 किग्रा. हो जाता है। इसके पश्चात् इन्हें पालना आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं रहता है। अतः इस अवधि में दिया जाने वाला राशन ही ब्रॉयलर राशन कहलाता है। आजकल बाजार में तैयार दाना मिलता है। इसमें मक्का व गेहूँ का चापड़ आदि खाद्य पदार्थ निर्धारित मात्रा में मिलाकर पक्षियों को खिलाया जा सकता है। ब्रायलर्स को स्टार्टर तथा फिनिशर दो प्रकार का आहार निम्नानुसार देना चाहिए।

ब्रॉयलर्स हेतु उपरोक्त मिश्रण में बाईफ्यूरान चूर्ण 50 ग्राम, नेफ्टीन 50 ई. सी. 100 ग्राम, रीवोमिक्स 25 ग्राम तथा औरोफेक 125 ग्राम मिलाना लाभप्रद रहता हैं। ब्रॉयलर को पाँच सप्ताह की आयु तक स्टार्टर राशन तथा इसके पश्चात् बेचने तक फिनिशर राशन देना चाहिए।

आहार व्यवस्था– मुर्गियों के लिए आहार का प्रबन्ध करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

1. आहार में स्थानीय स्तर पर उपलब्ध होने वाले दानों को शामिल करना चाहिए।
2. आहार सन्तुलित होना चाहिए। जिससे कि पक्षियों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इससे उनकी वृद्धि एवं विकास तीव्र गति से होता हैं।
3. आहार में सस्ते दानों को शामिल करना लाभप्रद होता है।
4. आहार में शामिल सामग्री को पीस कर खिलाना चाहिए।
5. मुर्गियों की संख्या के अनुसार आहार की निर्धारित मात्रा ही तौलकर पक्षियों को खिलानी चाहिए।
6. खाद्य सामग्री को मिक्सर से मिला लेना चाहिए जिससे कि अल्प मात्रा वाली सामग्री यथा विटामिन्स, एन्टीबायोटिक्स आदि भली–भाँति समान रुप से मिल जाए।
7. पक्षियों की संख्या अधिक होने पर मैश (दलिया) थोड़ा सा गीला करके देना चाहिए।
8. आहार तैयार करने व संग्रह करने के कमरे में समय–2 पर कीटाणुनाशक दवा सावधानीपूर्वक छिड़कनी चाहिए।
9. अधिक समय तक के लिए आहार तैयार करके नहीं रखना चाहिए।
10. आहार कक्ष जंगली जानवरों, पक्षियों, चूहों या कीड़ों आदि से सुरक्षित होना चाहिए।
11. आहार के कमरे में सीलन नहीं होनी चाहिए।
12. बनाया हुआ आहार सदैव बन्द पात्रों में ही रखना चाहिए।
13. खाद्य सामग्री की उपयोगिता, मूल्य तथा गुणवत्ता आदि की

सारिणी–20.4.4 ब्रॉयलर्स आहार (Broiler's ration)

क्र.सं.	खाद्य पदार्थ का नाम	ब्रायलर स्टार्टर		ब्रायलर फिनिशर	
		आहार–1	आहार–2	आहार–1	आहार–2
1.	मक्का पीली	42%	35%	25%	35%
2.	जौ	6.5%	–	5%	8%
3.	ज्वार	12%	9%	13%	17.5%
4.	चावल पालिस	–	7.5%	20.5%	–
5.	मूँगफली की खली	30%	28%	24%	23%
6.	गेहूँ का चापड़	–	5%	5%	3%
7.	मछली का चूर्ण	7%	8%	5%	5%
8.	शीरा या लपटी	–	5%	–	6%
9.	हड्डी का चूर्ण	1%	1%	1%	1%
10.	प्रिमिक्स	1%	1%	1%	1%
11.	नमक	0.5%	0.5%	0.5%	0.5%
	योग	**100%**	**100%**	**100%**	**100%**

जाँच समय–2 पर करते रहना चाहिए।

आवास प्रबंधन– मुर्गीपालन व्यवसाय से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि पक्षियों की वृद्धि तेजी से हो, उनका स्वास्थ्य अच्छा हो, मृत्युदर न्यूनतम हो, उनको सुरक्षा का उचित प्रबन्ध हो तभी उत्पादन अधिक होगा। उपर्युक्त सारी बातें एक अच्छे आरामदायक आवास द्वारा ही पक्षियों को उपलब्ध कराई जा सकती हैं।

आवास का चयन– मुर्गीपालन हेतु आवास का चयन करते समय निम्नलिखित बातों को दृष्टिगत रखना चाहिए–

1. स्थान का चयन–

(अ) स्थान आबादी से बहुत अधिक दूर नहीं होना चाहिए।

(ब) स्थान आस–पास के स्थान से थोड़ा ऊँचा होना चाहिए।

(स) उस स्थान पर सूर्य के प्रकाश व वायु संचार में कोई बाधा न हो।

(द) उस स्थान पर पानी व बिजली की पूर्ण सुविधा हो।

(य) आवागमन के पर्याप्त साधन हों।

(र) स्थान पक्षियों के शत्रुओं तथा कीड़े–मकोड़ों से पूर्णतः सुरक्षित होना चाहिए।

(ल) भूमि अधिक महँगी न हो।

2. आवास के गुण–

(अ) आवास इस प्रकार से बना हो कि वह पक्षियों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान कर सके।

(ब) आवास में पक्षियों के लिए प्रकाश एवं वायु के आवागमन का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।

(स) आवास बिल्कुल सूखा रहना चाहिए अर्थात् उसमें छत या दीवारों से जल का रिसाव, फर्श से जल का बहना या पानी के पात्रों से जल का रिसना आदि किसी भी कारण से सीलन नहीं हो।

(द) आवास सदैव स्वच्छ रहना चाहिए।

(य) मुर्गियों की नस्ल तथा संख्या के अनुसार उनको पर्याप्त स्थान उपलब्ध हो।

(र) मुर्गीशाला मनुष्यों के आवासों अर्थात् आवासीय क्षेत्र के समीप नहीं होनी चाहिए अन्यथा दुर्गन्ध घरों में रहती है। आवासीय क्षेत्र से अधिक दूर होने पर आने–जाने में समय, श्रम, धन अधिक लगता है।

कुक्कुट आवास की प्रणालियाँ (Housing System of Poultry)–

कुक्कुट आवास बनाते समय यह बात ध्यान में रखी जाती है कि मुर्गीपालन किस प्रणाली से किया जाना है। इसकी निम्नलिखित चार मुख्य प्रणालियाँ हैं–

1. घर के पीछे मुर्गीपालन (Back yard system)
2. विस्तृत प्रणाली या मुर्गी को बिना नियंत्रण खुले चारण में रखना (Extensive System)
3. अर्द्ध–सघन प्रणाली (Semi-intensive system)
4. सघन प्रणाली (Intensive system)

इन विधियों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से है–

1. घर के पीछे मुर्गीपालन (Back yard system)– हमारे देश में गरीब व्यक्ति आमतौर पर अपने परिवार के व्यक्तियों के अण्डों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 5–7 मुर्गीयाँ घर के पीछे पाल लेते हैं। घर में बची खाद्य सामग्री इन मुर्गियों को खिला दी जाती हैं तथा इनके लिए आस–पास उपलब्ध सामग्री का प्रयोग करके सस्ते घर बना दिये जाते हैं।

2. विस्तृत प्रणाली (Extensive System)– इसे भू–प्रधान रीति भी कहा जाता हैं। इस प्रणाली से मुर्गीपालन करने में खुला चारण क्षेत्र होता है जहाँ पक्षी बिना नियंत्रण घास के मैदानों में घूमते रहते हैं। मुर्गीपालक सड़कों तथा खतरे वाले स्थानों पर तार की जाली लगा कर उसे सुरक्षित बना देते हैं। इसी क्षेत्र में एक रैन बसेरा (मुर्गीघर) जमीन से थोड़ा ऊपर उठा हुआ, बाँस या लकड़ियों के फर्श वाला बना दिया जाता है। इसमें केवल रात्रि विश्राम के लिए ही पक्षी बैठता है अतः प्रति पक्षी एक वर्ग फुट स्थान ही दिया जाता है। इस प्रणाली से एक हेक्टेयर में 125 पक्षी, लेकिन अनुकूल मौसम में 250 तक पक्षी पाले जा सकते हैं।

मुर्गीपालक को दाना, पानी रैन बसेरे के पास ही रख देने चाहिए अण्डे देने हेतु अलग से घोंसले बना देने चाहिए, जिन्हें रात्रि को सुरक्षा के उद्देश्य से बन्द करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

3. अर्द्ध–सघन प्रणाली (Semi Intensive System)– इस प्रणाली में मुर्गियों को निम्नलिखित दो प्रकार से पाला जाता हैं।

(अ) पोल्ट्री घेरा प्रणाली (Poultry run system)– इस प्रणाली में एक मुर्गीघर के साथ मुर्गियों के विचरण के लिए थोड़ा खुला क्षेत्र भी होता है। दिन में पक्षी खुले क्षेत्र में घूमते हैं तथा रात के समय मुर्गीघर में चले जाते हैं। दाने तथा पानी के पात्र खुले स्थान तथा मुर्गीघर में भी रखे जा सकते हैं। खुले क्षेत्र को तार या लोहे की चद्दरों (पत्तरों) या लकडी की खपच्चियों आदि से निर्मित जालियों से घेर कर सुरक्षित बना दिया जाता है। इनका फर्श पक्का या जालीदार होता है। इस पद्धति में 50 पक्षियों तक प्रति पक्षी 270 वर्ग फुट स्थान परन्तु अधिक पक्षी होने पर 160 वर्ग फुट स्थान दिया जाता है।

(ब) उठाऊ–मकान प्रणाली (Folding system)– इस पद्धति में भी मुर्गीघर तथा विचरण स्थान एक साथ ही होते हैं परन्तु इसमें यह सम्पूर्ण भाग एक ढाँचे द्वारा ढक दिया जाता है।

इस विधि में प्रति पक्षी 5 वर्ग फुट स्थान की आवश्यकता पड़ती है। एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर मकान को ले जाने की सुविधा के लिए इसका आकार सामान्यतः 20 x 5 फुट रखते हैं जिसमें 18–20 मुर्गियों को पाला जा सकता है। मकान के पास में ही दाने व पानी के पात्र तथा अण्डा देने हेतु बिछावन युक्त घोंसलों की व्यवस्था करना आवश्यक है।

(4) सघन प्रणाली (Intensive system)– मुर्गीपालन की सघन पद्धति में निम्नलिखित प्रमुख प्रणालियाँ हैं–

(अ) गहरी–बिछाली प्रणाली **(Deep litter system)**
(ब) बिछावन अहाता प्रणाली **(Straw yard system)**
(स) तार फर्श वाला घर प्रणाली **(Wire floored system)**
(द) पिंजरा क्रम प्रणाली या बैटरी प्रणाली **(Battery system)**

इनमें से मुख्यतः गहरी विछावन प्रणाली तथा पिंजरा क्रम या बैटरी प्रणाली ही मुख्यतः अपनाई जाती हैं।

(अ) गहरी–बिछाली प्रणाली– इस प्रणाली में कुक्कुट आवास की बाहरी दीवारों की ऊँचाई 4 फुट रखते हैं। दीवार का ऊपरी शेष भाग जालीदार बनाते हैं। इसकी छत टिन या ऐसबेस्टस आदि की बनाते हैं। इस घर के अन्दर पक्षियों के आराम के लिए सामुदायिक या कई मंजिल **(Tier)** वाला दड़बा तथा पर्याप्त संख्या में अण्डे देने वाले घोंसलों का होना आवश्यक है।

सर्वप्रथम आवास में 6 इंच मोटी बिछाली की तह बिछा देते हैं। इसके गीला होने पर इसके ऊपर और बिछाली की तह लगा देते हैं यह क्रम बिछाली की मोटाई 12 इंच होने तक चलता रहता है। बिछाली के लिए धान की भूसी, गेहूँ, जौं या जई का भूसा, लकड़ी का बुरादा, बारीक कटी हुई सूखी घास, गन्ने की खोई, बारीक कटी हुई कुट्टी आदि सूखे पदार्थों का प्रयोग किया जा सकता है।

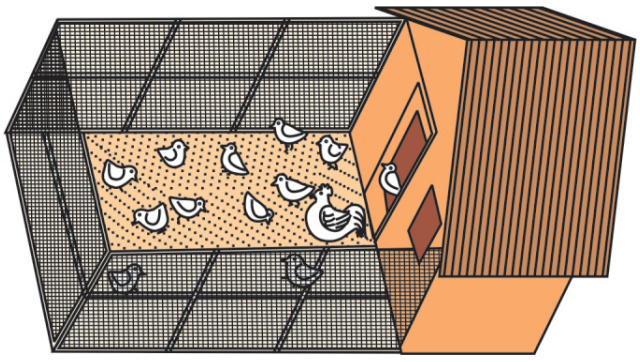

चित्र सं. 20.4.1 साधारण गहरी बिछाली घर

इस प्रणाली से मुर्गीपालन के लिए कुक्कुट आवास का आकार मुर्गियों की संख्या के अनुसार इस प्रकार रखना चाहिए– 100 मुर्गियों के लिए लम्बाई 20 फुट, चौड़ाई 15 फुट व ऊँचाई 10 फुट, 200 मुर्गियों के लिए 30 फुट x 20 फुट x 10 फुट, 500 मुर्गियों के लिए 60 फुट x 25 फुट x 10 फुट तथा 1000 मुर्गियों के लिए 100 फुट x 30 फुट x 10 फुट आकार का मुर्गीघर बनाना चाहिए।

(ब) बिछावन अहाता प्रणाली– यह प्रणाली गहरी बिछाली तथा पोल्ट्री घेरा प्रणाली दोनों के मेल से विकसित की गई है। इसमें भी रैन बसेरे के साथ लगा एक अहाता होता है जिसमें बिछाली बिछी होती है। सुरक्षा की दृष्टि से अहाते के ऊपरी भाग पर जाली लगा दी जाती है। इसका फर्श पक्का व ढलानदार होता है जिससे वर्षा का पानी अहाते में न ठहर सके।

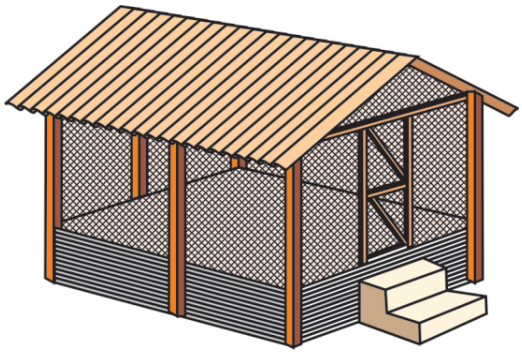

चित्र सं. 20.4.2 बिछावन अहाता

इस विधि में मुर्गीघर (रैन बसेरे) में 50 मुर्गियों तक प्रति पक्षी 3 वर्ग फुट तथा 50 से अधिक मुर्गियाँ होने पर स्थान 2 वर्ग फुट प्रति पक्षी होना चाहिए। जबकि इससे जुड़े अहाते (बाड़े) का आकार निम्न प्रकार होना चाहिए–

50 मुर्गियों के लिए प्रति पक्षी 8 वर्ग फुट, 100 पक्षियों के लिए 6 वर्ग फुट तथा 100 से अधिक पक्षी होने पर 4 वर्ग फुट प्रति पक्षी स्थान उपलब्ध होना चाहिए।

इसमें दाने व पानी के पात्र तथा अण्डे देने के घोंसले अहाते के अन्दर रखे होने चाहिए।

(स) तार फर्श वाला घर प्रणाली– मुर्गीपालन की यह पद्धति गहरी बिछाली तथा पिजंरा क्रम प्रणाली का मिलाजुला रुप होती है। इसमें घर का फर्श कच्चा अथवा पक्का हो सकता है। इस प्रणाली में फर्श से लगभग 3 फुट ऊपर तार की जाली का फर्श बनाया जाता है। जाली का आकार 12′ x 6′ या 15′ x 6′ हो सकता है। जाली टुकड़ों में ही पड़ी होनी चाहिए जिससे जाली को उठाकर उसके नीचे फर्श की सफाई सुगमता से की जा सके।

इस प्रणाली में 100 पक्षियों तक प्रति पक्षी 2 वर्ग फुट तथा अधिक पक्षी होने पर यह स्थान घटाकर प्रति पक्षी एक वर्ग

फुट ही रखा जाता है। आवास में दाने व पानी के पात्र तथा अण्डे देने के घोंसलों की व्यवस्था की जाती है।

(द) पिंजरा क्रम प्रणाली या बैटरी प्रणाली– इस पद्धति में पक्षियों को पालने के लिए जालीदार पिंजरे **(Cages)** तैयार करवाये जाते हैं। इनमें एक अथवा 3 से 5 पक्षियों के रहने की व्यवस्था की जाती है। एक पक्षी वाले पिंजरे का आकार 25 x 45 से.मी. होता है।

पिंजरे का फर्श आगे की ओर ढालू होकर ऊपर की ओर मुड़ा हुआ होता है जिसमें अण्डा स्वयं ही वहाँ आकर रुक जाता है। इस पद्धति में पिंजरों को कतारों या क्रम में रखने के कारण ही इसे पिंजरा क्रम प्रणाली कहा जाता है। पिंजरों को इस प्रकार एक दूसरे के ऊपर रखा जाता हैं कि दो कतारो के मध्य आने–जाने का पर्याप्त स्थान हो तथा एक पक्षी की बीट दूसरे पक्षी के ऊपर न पड़े। इन पिंजरों में बीट को बाहर निकालने की दो प्रकार से व्यवस्था की जाती है। पक्षियों की संख्या कम होने पर पिंजरे के नीचे बीट् ट्रे रख देते हैं। जबकि अधिक संख्या में पक्षी होने पर बीट एकत्रित करने के लिए स्वचालित यंत्र का प्रयोग करते हैं। इसमें प्रत्येक पिंजरे का सम्बन्ध एक चौड़े बेल्ट से कर दिया जाता है। कभी–2 आहार व अण्डा एकत्रित करने के लिए भी इसी प्रकार की स्वचालित व्यवस्था की जाती है।

चित्र सं. 20.4.3 एकल पिंजरों को रखने की सीढ़ीनुमा प्रणाली

इस प्रणाली में प्रत्येक पिंजरे के बाहर की ओर दाने एवं पानी के पात्रों की व्यवस्था की जाती है।

कुक्कुट–आवास में काम आने वाले उपकरण

मुर्गीपालन व्यवसाय में कुक्कुट–आवास में काम में आने वाले उपकरण सस्ते, आसानी से उपलब्ध होने वाले, टिकाऊ तथा प्रयोग करने में सुगम होने चाहिए।

एक कुक्कुट आवास में निम्नलिखित प्रमुख पात्रों एवं उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है–

1. दाने के बर्तन– इन्हें खाद्य पदार्थ के बर्तन या फीडर्स भी कहा जाता है। इन बर्तनों में आहार को, बर्बाद होने तथा गन्दा होने से बचाने के गुण होने चाहिए। इनकी सफाई सरलतापूर्वक हो सके।

दाने के बर्तनों का आकार एवं प्रकार पक्षियों के कद एवं आयु के अनुसार होना चाहिए। प्रारम्भ में चूजों को 3–4 दिन तक गत्ते के बने हुए, ढक्कननुमा, कम गहरे बर्तनों में दाना दिया जाता है। बाद में बड़े बर्तनों का प्रयोग करना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि बर्तनों के ऊपर पक्षियों को बैठने से रोकने के लिए तार की जाली आदि लगी होनी चाहिए।

100 पक्षियों के लिए दाने के पात्रों (नाँद के आकार के) का आकार उनकी उम्र के अनुसार निम्न होना चाहिए–

1 से 4 सप्ताह तक– लम्बाई 3 फुट, चौड़ाई 4 इंच तथा ऊँचाई 2 इंच।

4 से 8 सप्ताह तक– लम्बाई 6 फुट, चौड़ाई 4 इंच तथा ऊँचाई 2 इंच।

8 से 12 सप्ताह तक– लम्बाई 8 फुट, चौड़ाई 6 इंच तथा ऊँचाई 4 इंच।

12 से 20 सप्ताह तक– लम्बाई 11 फुट, चौड़ाई 6 इंच तथा ऊँचाई 5 इंच।

पक्षियों के आहार के लिए 8 इंच से 16 इंच व्यास वाले खोखले बेलनाकार बर्तन भी प्रयोग किये जाते हैं। इनकी ऊँचाई 2 फुट होती है। इन बर्तनों को छत से लटका देते हैं। एक बर्तन 75 बड़े चूजों तथा 25 व्यस्क मुर्गियों के लिए एक सप्ताह के आहार के लिए पर्याप्त रहता है।

उत्तम किस्म के दाने के पात्रों के दो मुख्य भाग होते हैं एक भाग नाँद (Trough) तथा दूसरा भाग हॉपर (Hopper) कहलाता है। हॉपर में दाना भर देते हैं जब मुर्गियाँ नाँद में आहार खाती हैं तो हॉपर में से दाना अपने आप ही धीरे–2 नाँद (Trough)में आता रहता है।

चित्र सं. 20.4.4 लटकाने वाला आहार का बेलनाकार पात्र

चित्र सं. 20.4.5 मुर्गियों के लिए आहार पात्र

2. पानी के बर्तन– मुर्गियों के लिए पानी का पात्र ऐसा होना चाहिए जिससे पक्षी आसानी से जब चाहें पानी पी सकें तथा पानी स्वच्छ रहें और फर्श पर न फैले।

पानी के पात्र के लिए मिट्टी का बर्तन या बोतल का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए एक मिट्टी का बर्तन जिसकी गर्दन में छिद्र कर दिया जाता हैं तथा उसे पानी से भरकर एक दूसरे पानी से भरे गहरे कुण्डे (पात्र) में उल्टा करके रख देते हैं। इस प्रकार मटके से पानी धीरे–2 कुण्ड में आता रहता है। बोतल वाले पानी के पात्र में एक बोतल में पानी भरकर किसी स्टैण्ड की सहायता से उसे पानी से भरे बर्तन में उल्टा करके रख देते हैं। बोतल से धीरे–2 पानी बर्तन में आता रहता हैं।

चित्र सं० 20.4.6 मुर्गियों के लिए जल पात्र

3. अण्डे का घोंसला या बक्सा– प्रत्येक मुर्गीघर में मुर्गियों के अण्डे देने के लिए घोंसले या बक्से रखे जाते हैं। इनकी संख्या प्रति 5–6 मुर्गियों पर एक हो। घोंसले ऐसे हों जो आसानी से साफ किये जा सकें, मुर्गी आसानी से प्रवेश कर सके, वायु आवागमन की पर्याप्त सुविधा हो। घोंसलों का फर्श ढालू हो जिससे अण्डा लुढ़ककर सामने आ जाए। अधिकतर ये बक्से एक घन फुट आकार के होने चाहिए। इन घोंसलों में सूखे बिछावन की एक पर्त अवश्य बिछा देनी चाहिए। 50 मुर्गियों के लिए 5 फुट लम्बा, 2 फुट चौड़ा तथा 2 फुट ऊँचा सामुदायिक घोंसला भी बनवाया जा सकता हैं।

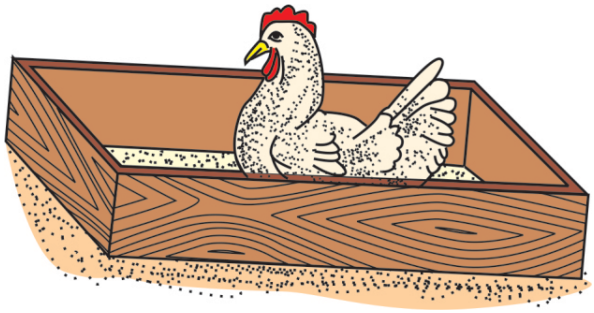

चित्र 20.4..7 अण्डे देने के लिए बक्सा

4. ग्रिट (Grit) के बर्तन– कुक्कुटशाला में मुर्गियों की पाचन शक्ति ठीक बनाये रखने के लिए संगमरमर के छोटे–2 टुकड़े रखना जरुरी है। इस कार्य के लिए धातु या लकड़ी से बने पात्रों का प्रयोग किया जा सकता है। वयस्क पक्षियों को ग्रिट **(Grit)** की अधिक आवश्यकता होती है।

5. हरे चारे का पात्र– सामान्यतः 4 सप्ताह के पश्चात् पक्षियों को विटामिन "ए" तथा रेशे की पूर्ति के लिए हरा चारा उपलब्ध कराना चाहिए। इसके लिए प्रति 100 पक्षी 3 किग्रा. हरा चारा, जिसमें रिजका, बरसीम, पालक आदि हो, काटकर व धोकर अलग से पात्रों में कुक्कुट आवासों में रख देना चाहिए।

उपर्युक्त उपकरणों के अतिरिक्त एक मुर्गीफार्म पर अण्डे रखने की ट्रे या पेटियाँ, केण्डलिंग लैम्प, तुला, चूजों के बक्से, बर्तनों को स्वच्छ व जीवाणु रहित करने की मशीनों आदि की भी आवश्यकता होती है।

20.5 मुर्गियों के प्रमुख रोग (कारण, लक्षण एवं उपचार)

Important diseases of poultry (cause, symptom and remedy) – मुर्गियों की बीमारियों से प्रायः झुण्ड में बहुत हानि होती हैं इन बीमारियों से मुर्गी फार्मों पर उनकी मृत्युदर बढ़ जाती हैं एवं पक्षियों कें अप्रत्यक्ष रुप से जीवन शक्ति कमजोर हो जाती हैं। जिसमें मुर्गी पालन से समुचित लाभ प्राप्त नहीं हो पाता हैं। मुर्गियों में अनेक प्रकार की व्याधियाँ पायी जाती हैं। अतः इनकी रोकथाम तथा उपचार फार्म पर करना अनिवार्य हो जाता हैं।

व्याधियों की रोकथाम के लिये निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिए।

1. चूजे केवल ऐसे झुण्ड (Flock) से ही प्राप्त करने चाहिए जो बीमारियोंसे पूर्णतया मुक्त हो।
2. चूजों को वयस्क मुर्गियों से दूर रखें।
3. दड़बों में चूजों या मुर्गियों की भीड़ न हो।
4. दड़बों की नियमित सफाई हो तथा आसपास भी सफाई होनी चाहिए।
5. रोग से मरे पक्षियों को गहरे गड्ढें में गाढ़ देना चाहिए या जला देना चाहिए।
6. मक्खी, मच्छर, कॉकरोच, जूँ, चिचड़ी, तथा अन्य परजीवियों का नियंत्रण करना चाहिए।
7. एक दिन के चूजों को क्लोरो माइसिटीन 1 मिलीग्राम प्रति चूजों की दर से प्रतिदिन पानी में घोलकर 4 दिन तक देनी चाहिए ताकि *ई० कोलोई* तथा टाइफाइड ग्रुप के जीवाणुओं द्वारा होने वाली हानि से बचा जा सके।
8. वैक्सीन लगाने का कार्य सांय में ही करें जिसमें चूजों को पूरी रात आराम मिल सके और जो तनाव वैक्सीन लगाने से उत्पन्न हुआ था वह भी समाप्त हो सके।
9. अपने चूजों के स्वास्थ्य को प्रतिदिन देखें तथा अस्वस्थ चूजों को तुरन्त बाड़े में से निकाल दें एवं डाक्टर की सलाह लेवें।
10. मुर्गीघर में घुसने से पूर्व जूतों के तलवों को चूने पर रखकर या फिनाइल में भिगोकर जीवाणु रहित कर लें।

रानीखेत बीमारी (Ranikhet Disease)

इसे न्यू कैसल (New Castle Disease) रोग भी कहते हैं। यह मुर्गियों की एक घातक बीमारी है। जिसमें पक्षियों का मुख्यतः श्वसन एवं तंत्रिका तंत्र प्रभावित होता है। यह रोग सभी आयु की मुर्गियों में होता है। लेकिन इसमें सबसे अधिक कम उम्र के चूजे प्रभावित होते हैं। इसका प्रभाव टर्की, कौआ, कबूतर, बतख, हंस कोयल तथा तीतर पर भी होता है। मुर्गी पालकों को खासतौर से वर्षा ऋतु में इस रोग से काफी अधिक हानि उठानी पड़ती है।

रोग का कारक (Etiology) :– यह एक प्रकार के वायरस पैरामिक्सोवायरस टाइप–1 (Paramyxovirus type-1) द्वारा फैलता है। यह वायरस निर्जलीकरण से और पराबैंगनी किरणों (धूप) में तेजी से नष्ट हो जाता है।

लक्षण (Symptoms) :–

1. पक्षियों में दम फूलना, खाँसना या छींकना रोग की प्रारम्भिक अवस्था को प्रदर्शित करता हैं। इस समय उनका खाना भी कम हो जाता है।
2. नाक से श्वास लेने में परेशानी आती है। तथा हाँफते हुऐ मुँह को खोल कर श्वास लेनी पड़ती है। श्वास लेते समय कभी कभी सीटी की सी आवाज आती है।
3. कफ तथा लार का निकलना और नाक से पानी जैसे तरल पदार्थ का बहना।
4. ये सुस्त तथा आँखें बन्द करके रखते हैं।
5. चूजों को बुखार हो जाता हैं। प्यास बहुत लगती है। और पीले हरे रंग के पानी जैसे बदबूदार दस्त लग जाते हैं।
6. पैर एवं पंखों में लकवा जैसे लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।
7. गर्दन को उलटकर पीठ के ऊपर रखना या शरीर के अन्य भागों की ओर छिपाना तथा घर के कोने में छिप जाना।
8. रोग के बढ़ने पर चूजे मरने लगते हैं। रोग की भयंकर अवस्था में चूजों में इस बीमारी के कुछ ही लक्षण दिखाई देते हैं। और वे अचानक मरने लगते हैं। परन्तु प्रौढ़ पक्षी कुछ देरी से मरते हैं।

उपचार (Treatment):– वर्तमान में किसी भी मूल्य का कोई कारगर इलाज नहीं है। उचित आवास और सामान्य देखभाल अच्छी तरह से करना ही बचाव है।

रोकथाम (Prevention and Control) :– इसकी रोकथाम निम्न प्रकार की जा सकती है –

1. बीमार पक्षियों का कत्लेआम करना।
2. पक्षियों को 10–15 के समूह में छाँट कर अलग करना और प्रत्येक समूह को अलग परिचारिकाओं में रखना।
3. पाल्ट्री फार्म के साफ सफाई के अवशेषों से सभी संक्रामक सामग्री को हटाना।
4. पाल्ट्री फार्म यातायात के साधनों से दूर होना चाहिए।
5. पाल्ट्री फार्म पर मुर्गियों की देखभाल हेतु अलग से नौकर रखना चाहिए।

इसके नियंत्रण के लिए स्वच्छता और टीकाकरण के माध्यम से दूर कर सकते हैं। टीकाकरण कार्यक्रम तालिका नं. 20.5.1 में दिया गया है।

तालिका 20.5.1 मुर्गियों में टीका लगाने की अनुसूची

चूजों की आयु	रोग	टीका	संरक्षण की अवधि	प्रति रक्षा	प्रयोग विधि	मात्रा
प्रथम दिन या एक सप्ताह तक	गले का संक्रमण*	अण्डा रुपान्तरित आई.बी. (egg adapted I.B.) वैक्सीन	प्रशीतक ताप पर 6 माह तक	ठीक पता नहीं	नाक के अन्दर (Intranasal)	एक–एक बूंद दोनों नाक में
प्रथम दिन	रानी खेत ** (New castle)	वैक्सीन स्ट्रेन एफ या लसोटा	प्रशीतक में तीन माह तथा कमरे के तापक्रम पर 10 दिनों तक	15 सप्ताह	नाक के अन्दर	एक–एक बूंद दोनों नाक में
एक सप्ताह तक	मैरेक रोग (MD)	कोशिका युक्त टर्की या बतख के जुलपित्ती रोग के वायरस का आयातित टीका	फ्रीज ड्राइंग टीका है जिसे प्रशीतक में 2 माह तक सुरक्षित रख सकते	ठीक पता नहीं	अन्तः पेशीय	0.2 मिली या निर्माण –कर्ता के निर्देशानुसार
2–3 सप्ताह	मुर्गी का चेचक (Fowl pox)	चेचक वाले कबूतर के वैक्सीन में ग्लिसरीन मिलाकर	प्रशीतक में दो माह तक	6–8 सप्ताह तक	पिच्छ स्तरक	पुरेरी या रुई का फाहा देना
6–8 सप्ताह	मुर्गी का चेचक***	चूजों के भ्रूण का रूपान्तरित चेचक चेचक का वाइरल टीका	प्रशीतक में दो माह तक	जीवन पर्यन्त	पक्ष पेटा	पुरेरी के बाद दो चीरा
8–12 सप्ताह	रानी खेत****	वैक्सीन मुक्तेश्वर (स्ट्रेन–R_2B) पर 10 दिन तक	प्रशीतक में तीन माह तथा कमरे के ताप	जीवन पर्यन्त	अन्तः पेशीय	0.5 मिली /पक्षी
12 सप्ताह	चिचड़ी रोग	स्पीरोकिडोसिस	फ्रीज ड्राईंग वैक्सीन जिसे प्रशीतक में एक वर्ष तथा कमरे के ताप पर 15 दिन तक रखा जा सकता है।	1.5 वर्ष तक	अन्तः पेशीय	1.5 मिली / पक्षी
12 सप्ताह तथा इससे अधिक	मुर्गी का हैजा	मुर्गियों के कालरा माँस रस का ब्राथ वैक्सीन।	2 से 5^{o} से. वाले प्रशीतक में 6 माह तक	3 माह तक	अन्तः पेशीय	0.5 मिली /पक्षी

नोट – * तथा ** टीकों में 4–5 दिन का अन्तर तथा *** और **** टीकों में 10 से अधिक का अन्तर रखते हैं।

मुर्गियों की चेचक (Fowl Pox)

चेचक रोग सामान्यतः सभी आयु की मुर्गियों में प्रायः गर्मियों में होता है। लेकिन अक्सर कम उम्र (8 से 12 सप्ताह) के पक्षियों में यह रोग होता है। इससे पक्षी कमजोर हो जाते है और काफी पक्षी मर जाते हैं। जिन पक्षियों में यह रोग एक बार हो जाता है। उनमें अक्सर दुबारा यह चेचक रोग नहीं होता है। एक बार प्रारम्भ हो जाने पर यह रोग तेजी से फैलता है। खासतौर से यह बीमारी मुर्गी एवं टर्की में होती है। लेकिन कबूतर, बत्तख तीतर तथा बटेरों में भी चेचक रोग होता है।

कारक (Etiology) :– यह वायरस द्वारा फैलने वाला रोग है। मुर्गियों में यह बोरेलिओटा एबियम (*Borreliota avium*) टर्की में बोरेलिओटा मेलिग्रेडिस (*B. meleagridis*) तथा कबूतर में बोरेलिओटा कोलुम्बी (*B.columbae*) स्ट्रेन से फैलता है।

लक्षण (Symptons) :– मुर्गियों में चेचक तीन प्रकार की होती हैं।

1. सूखी चेचक जिसे त्वचीय (cutaneous) चेचक भी कहते हैं इसमें कलंगी, गलचर्म तथा चेहरे पर सूखी पपड़ी की तरह प्रकोप दिखाई देता है।
2. आर्द्र चेचक (Wet pox) इसे डिप्थीरिया टाइप की चेचक कहते हैं। मुख तथा ग्रासनली की म्यूकस झिल्ली Mucus membrance) इसमें प्रभावित होती है।
3. तीसरी प्रकार की चेचक में कोराइजा (Coryza like) बीमारी के से लक्षण दिखाई देते हैं। इसमें नासिका में संक्रमण होता है।

उपरोक्त तीनों प्रकारों के सामूहिक लक्षण निम्न प्रकार दिखाई देते हैं।

1. पक्षी की कलंगी, चेहरे, चोंच, टाँग, पलक तथा त्वचा पर छोटे–छोटे फफोले पड़ जाते हैं। जो शुरु में हल्के भूरे रंग के तथा बाद में गहरे भूरे रंग के होकर सूखने लगते हैं। तीन चार सप्ताह बाद सूखी त्वचा (खुरंट) शरीर से गिरने लगती है।
2. मुर्गियों में तेज बुखार हो जाता है।
3. श्वास नली में सूजन तथा इससे लसदार पदार्थ का स्राव होता है।
4. सिर में सूजन होती है। जिससे पक्षी मर जाते हैं।
5. अति तीव्रता की स्थिति में आँख, मुँह तथा गले में हल्के पीले रंग की झिल्ली पड़ जाती हैं। जिसके नीचे छोटी–छोटी दानेनुमा रचना दिखायी देती हैं।

उपचार (Treatment) :- इस बीमारी का कोई संतोषजनक उपचार नहीं है। लेकिन निम्न प्रकार उपचार देने पर पक्षियों को कुछ फायदा होता है।

1. रोग की साधारण अवस्था में उस पर पड़ी पपड़ियों को खुरच कर हटा देने से पशु को तनाव से कुछ मुक्ति मिलती है। लेकिन तीव्र रोग होने पर पपड़ियों को खुरचना हानिकारक सिद्ध हो सकता है।
2. घाव पर सिल्वर नाइट्रेट तथा पिकरिक अम्ल का घोल लगाना चाहिए।
3. शरीर पर कार्बोलेटिक वैसलीन 10% लगाना चाहिए। लेकिन आँख एवं मुँह पर प्रभाव होने पर उपरोक्त उपचार प्रायः नहीं करते। ऐसे स्थानों पर ग्लिसरीन का प्रयोग करते हैं।

रोकथाम (Prevention and control) :– चेचक रोग एक बार शुरु हो जाता है तो फिर उसकी रोकथाम नहीं कर सकते हैं। रोकथाम का एक मात्र उपाय रोग रोधी चेचक के टीके लगाना है। चेचक को रोकने के दो किस्म के टीके लगाते हैं।

1. पिजियन पॉक्स वैक्सीन– इसके लगाने से चूजों की सुरक्षा होती हैं। और इसका असर केवल तीन महीने तक ही रह पाता है।
2. फाउल पॉक्स वैक्सीनः– इसके लगाने से पक्षियों को इस रोग से आजीवन सुरक्षा रहती है।

फाउल पाक्स वैक्सीन का टीकाकरण गर्मी प्रारम्भ होने से पहले ही कर देते है। इस वैक्सीन में ग्लिसरीन या नमक का पानी टीका लगाने से ठीक पहले ही मिलाना चाहिये। चूजों के देने में कई बार सुई चुभो कर दवा को शरीर में प्रवेश कराते है। बची रह गई वैक्सीन को जला दे तथा खाली शीशी को सुरक्षित स्थान पर फेंक दे। एक दड़बे की सभी मुर्गियों को एक साथ टीके लगाये। क्योंकि टीका लगी मुर्गियों से उसी दड़बे की बिना टीका लगी मुर्गियों में यह रोग फैल सकता है।

जब चेचक का खतरा हो तो एक माह से कम उम्र के चूजों में एवं अण्डा देने वाली मुर्गियों में पिजियन पॉक्स वैक्सीन का टीका लगाना चाहिये। बाकी पक्षियों में फाउल पॉक्स वैक्सीन का टीका लगाते है। गर्मियों में पैदा हुये बच्चे कमजोर होते है। इसलिये उनमें पहले पिजियन पॉक्स वैक्सीन तथा बाद में फाउल पॉक्स वैक्सीन का टीका लगाना चाहिये। यह टीकाकरण 6 से 8 सप्ताह की आयु के चूजों में करना सबसे अच्छा रहता है।

खूनी पेचिस (Coccidiosis)

खूनी दस्त या खूनी पेचिस अक्सर छोटी उम्र (3 से 12 माह) के चुजो में होने वाला रोग है। जब दड़बे में अचानक अधिकांश चूजे मर जाये तो इस अचानक मृत्यु का कारण खूनी पेचिस होती है।

कारक (Etiology)– खूनीपेचिस (काक्सीडिया रोग) एक कोशीय प्रोटोजोआन समूह से फैलता है।

ये प्रोटोजोआन समूह सैकड़ो प्रकार की होती है। जिनमें से 9 ऐमेरियागण (Genus-*Eimeria*) की पक्षियों के स्वास्थ को प्रभावित करती है। इन 9 में से भी तीन *इ० टेनिल्ला* (*Eimeria tenella*) *इ० नेकाट्रिक्स* (*Eimeria necatrix*) तथा *इ० एसरवुलीना* (*Eimeria acervulina*) सबसे अधिक हानिकारक है।

लक्षण (Symptoms) :–

1. खूनी पतले दस्त चूजों को लग जाते है तथा कभी कभी भूरे पीले रंग का पदार्थ भी गुदा मार्ग से बाहर निकलता है।
2. पक्षी खाना पीना बन्द कर देते हैं।
3. खून की कमी से पैर एवं शरीर पीले पड़ जाते हैं।
4. पक्ष नीचे की तरफ लुढक जाते हैं।
5. रोगी पक्षी सुस्त होकर चक्कर काटने लगते हैं तथा बैठने पर पलकें झपकने लगती हैं। तथा पक्षियों की मृत्यु हो जाती है।
6. बड़ी आंत का ऊपरी भाग बढ़ जाता है तथा उसमे पीले भूरे रंग का पदार्थ या रक्त भरा होता है। इन्ही पदार्थो के इकट्ठा होते रहने से ऑत की कोशिकाएँ फट जाती है।

उपचार (Treatment) :–

1. सल्फामेजाथीन तथा सल्फाक्यूनोजाइलीन की 0.05 प्रतिशत तथा 0.1 प्रतिशत मात्रा पीने के पानी के साथ देनी चाहिये।
2. इस बीमारी में कुछ काक्सीडियोस्टेट जैसे काक्रीनाल, बाइफूरान, डायोडीन, सल्फेट, इम्बाजिन, एस्प्राल आदि दवाईयाँ भी चूजों की निर्धारित मात्रा में देते है।

रोकथाम (Prevention and Contorl) :–

1. मुर्गीधर की नियमित सफाई करते रहे।
2. समय–समय पर मुर्गीशाला को कीटाणुरहित करते रहना चाहिए।
3. चूजो को सन्तुलित आहार देकर रोग का आक्रमण सहन करने की शक्ति बढ़ाये।
4. थोडी मात्रा में कोक्सीडियोस्टेट देना भी लाभप्रद रहता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दू

1. मुर्गीपालन में मुर्गियों के साथ–2 बत्तख, बड़ी मुर्गी (टर्की), तथा बटेर आदि अण्डे देने वाले पक्षी भी सम्मिलित हैं।
2. हमारे देश में मुर्गीपालन व्यवसाय में आन्ध्रप्रदेश का पहला स्थान है।
3. राजस्थान में अजमेर मुर्गीपालन व्यवसाय में अग्रणी जिला है।
4. वे अण्डे अउर्वर कहलाते हैं, जिन्हें मुर्गियाँ बिना मुर्गो के देती हैं तथा जिनसे चूजे उत्पन्न नहीं हो सकते हैं।
5. रोड आईलैण्ड रेड, मुर्गी की द्विप्रयोजनी नस्ल है।
6. मुर्गी की प्लाइमाउथ रॉक नस्ल का माँस व्यापारिक दृष्टि से उच्च कोटि का होता है।
7. कवच के भार का लगभग 94% कैल्शियम कार्बोनेट से बना होता है।
8. अण्डे के चौड़े सिरे पर वायु स्थान होता है।
9. कुक्कुट आवास तथा उसमें काम में आने वाले उपकरण इस प्रकार के हों जिससे उनकी सफाई आसानी से की जा सके।
10. रानीखेत बीमारी पैरामिक्सोवायरस टाइप–1 द्वारा होती है।
11. रानीखेत बीमारी का मुख्य लक्षण हॉफते हुए पक्षी द्वारा मुँह खोल कर श्वॉस लेना तथा पैर एवं पखों मे लकवा होना है।
12. रानीखेत बीमारी की रोकथाम के लिए प्रथम दिन F_1 Strain तथा आठ सप्ताह की आयु पर R_2B Strain वैक्सीन का टीका लगाते हैं।
13. मुर्गियों का चेचक रोग अक्सर कम उम्र (आठ से बारह सप्ताह) के पक्षियों में होता है।
14. एक माह से कम उम्र के चूजों एवं अण्डे देने वाली मुर्गियों में चचेक की रोकथाम के लिए पिजियन पॉक्स वैक्सीन का टीका लगाते है।
15. खूनी पेचिस (Coccidiosis) अक्सर छोटी उम्र के चूजो में होने वाला रोग है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. प्राचीन काल में लड़ाई के लिए मुर्गी की कौन सी नस्ल पाली जाती थी ?
   (अ) व्हाइट लैगहॉर्न (ब) रोड आयलैंड रैड
   (स) असील (द) कड़कनाथ
2. केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान कहाँ पर स्थित है ?
   (अ) दिल्ली (ब) लखनऊ
   (स) मुजफ्फरनगर (द) इज्जतनगर
3. वर्तमान में हमारे देश में प्रति व्यक्ति अण्डों की उपलब्धता है–
   (अ) 57 अण्डे (ब) 36 अण्डे
   (स) 45 अण्डे (द) 30 अण्डे

4. अण्डा उत्पादन के लिये मुर्गी की सबसे अच्छी नस्ल हैं।
   (अ) रोड आइलैण्ड रेड (ब) असील
   (स) रेड कोर्निस (द) व्हाइट लैगहॉर्न
5. व्हाइट लैगहॉर्न नस्ल की मुर्गी का मूल स्थान बताईये।
   (अ) अमेरिका (ब) इटली
   (स) इंगलैण्ड (द) जर्मनी
6. अण्डे की जर्दी को मध्य में स्थिर रखने का कार्य करता है–
   (अ) कवच झिल्लियाँ (ब) श्वेतक या एल्ब्यूमिन
   (स) श्वेतक रज्जु या चैलेजा (द) कवच
7. मुर्गियों हेतु आवास की विस्तृत प्रणाली में रैन बसेरे में प्रति पक्षी स्थान दिया जाता हैं–
   (अ) 1 वर्ग फुट (ब) 1½ वर्ग फुट
   (स) 2 वर्ग फुट (द) ½ वर्ग फुट
8. रानीखेत बीमारी का दूसरा नाम है –
   (अ) न्यूकैसल रोग (ब) मेरेक रोग
   (स) फाउलकोराइजा (द) फाउल कोलेरा

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

9. हमारे देश में किस नस्ल के चूजे सर्वप्रथम अमेरिका से मंगवाये गये?
10. राजस्थान का मुर्गीपालन में अग्रणी जिला कौनसा है ?
11. अण्डे में कौन–2 से अवयव पाये जाते हैं ? उनके नाम लिखिए।
12. कुक्कुट फार्म पर निषेचित अण्डे प्राप्त करने के लिए मुर्गियों व मुर्गों का अनुपात लिखो।
13. सफेद माँस किसे कहते हैं?
14. प्राचीन समय में मुर्गीपालन व्यवसाय जोखिम भरा क्यों माना जाता था?
15. अण्डे में पाये जाने वाले प्रमुख खनिज तत्वों के नाम लिखो।
16. अमेरिकन वर्ग की मुर्गी की चार नस्लों के नाम लिखिये।
17. मुर्गी के आहार में कौन–2 से भोजन के अवयव होने चाहिए?
18. ब्रॉयलर को लगभग कितनी आयु में बेच देना चाहिए?
19. अर्द्ध–सघन आवास प्रणाली में 50 से अधिक पक्षी होने पर प्रति पक्षी कितना स्थान दिया जाना चाहिए?
20. पिंजरा क्रम प्रणाली में एक पक्षी के लिए पिंजरे का आकार लिखिए।
21. पक्षियों को ग्रिट खिलाने का क्या उद्देश्य है ?
22. रानीखेत बीमारी का कोई एक मुख्य लक्षण लिखिए।
23. मुर्गीयों के चेचक रोग का कारक लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

24. अण्डे में पाये जाने वाले अवयवों को सारिणी रुप में प्रदर्शित कीजिए।
25. मुर्गी माँस (चिकन) में कौन–2 से अवयव कितनी मात्रा में पाये जाते हैं? सारिणी बनाइये।
26. व्हाइट लैगहॉर्न नस्ल की मुर्गी की शारीरिक विशेषताऐं लिखिऐ।
27. प्लाइमाउथ रॉक नस्ल की मुर्गी की उपयोगिता लिखिऐ।
28. अण्डे के पीतक या जर्दी में भ्रूण के पोषण के लिए कौन–कौन से पदार्थ उपलब्ध होते हैं?
29. मुर्गीपालन के उद्देश्य संक्षेप मे लिखो।
30. मुर्गियों के सन्तुलित आहार में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज व विटामिन्स सम्बन्धी आहारों की कितनी–2 मात्रा शामिल की जानी चाहिए?
31. विस्तृत प्रणाली (Extensive System) का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
32. मुर्गियों को कौन–2 से हरे चारे खिलाने चाहिए? और क्यों?
33. कुक्कुट–आवास की अर्द्ध–सघन पद्धति का वर्णन करो।
34. रानीखेत बीमारी का उपचार बताइए।
35. मुर्गीयों में चेचक रोग अक्सर किस ऋतु एवं उम्र में होता है।

निबन्धात्मक प्रश्न–

36. हमारे देश में मुर्गीपालन की वर्तमान स्थिति एवं महत्त्व का विस्तार से वर्णन कीजिए।
37. रोड आइलैण्ड रेड नस्ल की मुर्गी का मूल स्थान, वितरण, विशेषताऐं एवं उपयोगिता लिखिए।
38. रेड कोर्निस नस्ल की मुर्गी का विस्तृत वर्णन कीजिए।
39. अण्डे देने वाली मुर्गियों के लिए सन्तुलित आहार तैयार कीजिए?
40. ग्रोअर्स आहार क्या हैं? एक सन्तुलित ग्रोअर्स आहार (Grower's ration) क्या है? एक सन्तुलित ग्रोअर आहार कैसे तैयार किया जा सकता है? सारिणी रुप में प्रदर्शित कीजिए।
41. मुर्गियों के लिए आहार का प्रबन्ध करते समय किन–2 बातों का ध्यान रखना चाहिए?
42. कुक्कुट–आवास में काम आने वाले प्रमुख उपकरणों का वर्णन कीजिए।
43. मुर्गियों के खूनी पेचिस बीमारी का कारण, लक्षण, उपचार तथा रोकथाम का वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला–

1. (स) 2. (द) 3. (अ) 4. (द) 5. (ब) 6. (स) 7. (अ) 8. (अ)